सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 4

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहजानन्द शास्त्रमाला

सर्वाधिकार सुरक्षित

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[१, २, ३, ४ भाग]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

सम्पादक :
पं० देवचन्द जैन शास्त्री, सहारनपुर

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, सदस्य स० शा०
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

मुद्रक :
साहित्य प्रिंटिंग प्रेस, बाजार दीनानाथ, सहारनपुर

१९६८]

[न्योछावर ४ रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[चतुर्थ भाग]

पदार्थभेदोंका निषेधक ब्रह्माद्वैतवाद–प्रमाणके स्वरूपमें बताया गया है कि जो निजका और अपूर्व अर्थका निर्णय कराये ऐसा ज्ञान प्रमाण होता है। इस स्वरूप के प्रसङ्गमें ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि अपूर्व अर्थका निर्णय कराने वाला ज्ञान प्रमाण है यह बात ठीक नहीं बैठती कारण यह है कि ये सारे पदार्थ जिनके ज्ञानको तुम प्रमाण कहते हो ये तो सब मिथ्या हैं और इसी कारण इन मिथ्याभूत मायारूप पदार्थोंका व्यवसाय करने वाले ज्ञान भी मिथ्यारूप हैं। अतएव अर्थव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण नहीं है, किन्तु परमात्मस्वरूपको, आत्माद्वैतको ग्रहण करनेवाला ज्ञान ही सत्य हैं। ब्रह्माद्वैतवादमें केवल एक ही ब्रह्ममात्र है अन्य कुछ सत् नहीं है ऐसा माना गया है, और जितने भी अन्य पदार्थ हैं वे सब ब्रह्मके विकार हैं, मायारूप हैं, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, वे वास्तविक सत् नही हैं। वास्तविक सत् तो एक ब्रह्म है। अथवा सर्वव्यापी आत्मा है। उसीको लक्ष्यमें लेकर ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि पदार्थका निर्णय करने वाला ज्ञान प्रमाण है यह तो ठीक नहीं किन्तु यह स्वरूप ठीक रहेगा कि परमात्मस्वरूपका जानने वाला ज्ञान प्रमाण है।

अभेदब्रह्मस्वरूपकी ही तात्त्विकता बतानेका प्रयास– भैया! यह प्रकरण बहुत लम्बा है और केवल ब्रह्माद्वैतवादी अपना स्वरूप रखते जा रहे हैं। अतः इस प्रकरणको सुनते हुए यह दृष्टि रखना चाहिए कि यह ब्रह्माद्वैतवादका मंतव्य है क्योंकि बहुत विस्तारसे ब्रह्माद्वैतवादको रखते जानेपर यह शङ्का बीचमें हो सकेगी क्या ऐसा स्वरूप है? वह स्वरूप सब पूर्वपक्षकारका है। ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि वस्तुका स्वरूप तो वह है जो इन्द्रियके खोलनेके अनन्तर, नेत्रके खोलनेके अनन्तर ही तुरन्त निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा सर्वथा एकत्वकी प्रतीति होती है। अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा न रखकर शीघ्र ही प्रथम प्रथम जो ज्ञान होता है वह तो है वस्तुस्वरूप और उसके बाद फिर जो भेद ज्ञानमें आने लगता है– यह पत्थर है, चौकी है, खम्भा है आदिक जो भेद ज्ञानमें आने लगते हैं ये सब अज्ञानके कारण ज्ञात होते हैं। यही स्वरूप तो वह है कि आंखें खुलने के बाद तुरन्त ही भेद जाननेसे पहिले भिन्न–भिन्न आकार प्रकार। व्यक्ति सत्त्व जाननेसे पहिले शीघ्र जो कुछ निर्विकल्परूपसे झलक होती है वह है वस्तुका स्वरूप और उसको जाननेवाला जो ज्ञान है वह प्रमाण है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अज्ञानवासनासे अनेक पदार्थोंके निर्णयका कथन—घट पट मकान आदिक अनेक पदार्थोंका निर्णय करने वाला ज्ञान तो अज्ञानरूप है। ये नाना प्रकारके पदार्थ क्यों विज्ञात होने लगते उसका कारण यह है कि अविद्याकी वासना लगी हुई है और उस हीके संकेतका स्मरण बनता है उससे विकल्पकी प्रतीति होने लगती है और फिर यह अन्यकी अपेक्षा रखकर प्रतीतिमें आता है, यह वास्तविक वस्तुस्वरूप नहीं है। जब अन्य अस्तित्वकी अपेक्षा न रखकर अन्य पदार्थकी कल्पनाएँ न बनाकर जो कुछ प्रतिभास हो वह है वस्तुका स्वरूप। और पदार्थमात्र उतना ही है। यह बहुत लम्बे समय तक याद रखना होगा कि जो कुछ कहा जा रहा है वह ब्रह्माद्वैतका स्वरूप कहा जा रहा है और इस ही दृष्टिसे सुनना।

सर्व विश्वको प्रतिभासान्तः प्रविष्टका कथन—जो कुछ प्रतिभास हो रहा है वह सब प्रतिभास हो रहा है वह सब प्रतिभास स्वरूप जब कभी अपने आपका ज्ञानस्वरूप ज्ञानमें आता है तो वह ज्ञानमें आता है तो वह ज्ञानस्वरूप ज्ञानमें ही तो प्रविष्ट है बाहर तो नहीं है। इस प्रकार जो जो कुछ भी प्रतिभासमें आ रहा है वह सब प्रतिभासके अन्तरंगमें ही प्रविष्ट है, बाह्य अर्थ कुछ नहीं है। जो कुछ दिख रहा है, अज्ञात हो रहा है यह सब मायारूप है। परमार्थवस्तुभूत तत्त्व तो एक ब्रह्म ही है। जो जो प्रतिभास होता है वह सब प्रतिभासके अन्दर ही प्रविष्ट है। जैसे प्रतिभास का खुदका स्वरूप प्रतिभासमें आता है तो वह प्रतिभासमें ही प्रविष्ट है। जो जो कुछ ज्ञानमें आता है वह सब ज्ञानमें ही प्रविष्ट है। और यह सर्व चेतन अचेतनरूप समग्र-वस्तु प्रतिभासमें आ रहा है अतः सब प्रतिभासान्तः प्रविष्ट है, इस अनुमानसे भी आत्मा द्वैतकी सिद्धि होती है।

विश्वकी प्रतिभासमात्रत्मताका अनुमान ब्रह्माद्वैत कहो, आत्माद्वैत कहो एक ही बात है। एक ब्रह्मके सिवाय इस लोकमें अन्य कुछ तत्त्व नहीं है। यहाँ यह अनुमान बनाया गया है कि सर्व पदार्थ ज्ञानमें ही गर्भित हैं, क्योंकि ज्ञात होनेसे। यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि सभी पदार्थोंका साक्षात् अथवा असाक्षात् कुछ भी प्रतिभास न हो तो किसी सत्यके विकल्पकी व्यवहारकी उत्पत्ति ही न होगी और कहा भी न जा सकेगा। सब कुछ प्रथम ज्ञानमें आता है और वह ज्ञानरूप ही है वास्तवमें भेद कल्पना करके अज्ञानकी वासनाके कारण सब कुछ भिन्न भिन्न समझमें आता है। ब्रह्माद्वैतके सिद्धान्तमें सीधीसी बात उन्होंने यह रखी है कि सब कुछ एक ब्रह्म है और उसकी ही ये नाना सृष्टियां हैं। तो यह सब उसका ही बाग है, सब उसका ही प्रसार है वैभव है ये सब चीजें कुछ नहीं हैं।

ब्रह्माद्वैतवादके आगमवाक्योंसे अभेद सृष्टिमूल ब्रह्मका समर्थन—इस बातको आगममें भी लिखा है ऐसा वे ब्रह्माद्वैतवादी ही अपना आगम रख रहे हैं—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ।
आरामं तस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन

ऐसा हमारे आगममें लिखा है। कि जगतमें जो कुछ है वह समस्त पदार्थ ब्रह्म है। ये नाना कुछ भी चीजें नहीं हैं और लोग जो कुछ निरखते हैं, उस एक ब्रह्म के आरामको, बागको फैलावको ही निरखते हैं, उस ब्रह्मको कोई नहीं देखता। और, भी बताया गया है 'पुरुष एवैतं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं स एव हि सकललोकसर्गस्थितिप्रलयहेतुः।" यह सब कुछ जो अब तक हुआ जो आगे होगा वह सब एक यह ब्रह्म ही है, एक सर्वव्यापक आत्मा ही है और वह ही समस्त जगतकी सृष्टि स्थिति और प्रलयका कारणभूत है। जैसे कि मकड़ी जालकी सृष्टि रचती है तो वह जाल क्या मकड़ीसे जुदा है? लोगोंको जुदा मालूम देती है उस जालकी व्यक्ति होनेपर यह लगने लगता है कि यह जाल पूरा गया है और देखो इसमें यह मकड़ी फसी है वह जाल न्यारा है। मकड़ी न्यारी है और वह फसी है यों लोग देखते हैं पर वास्तविकता क्या है। वह जाल मकड़ीकी रचना है, मकड़ीसे ही उत्पन्न हुई है और वह मकड़ी उस जालके बीच रह रही है। वहाँ दो चीज क्या है? सब कुछ एक ही वस्तु है। इसी तरह यह सारा जगत एक ब्रह्म ही है ब्रह्मसे ही यह सर्जित हुआ है और व्यक्तरूप हो जानेपर यह सब माया है और इस मायाके बीच यह ब्रह्म रह रहा है, सब कुछ वही एक ब्रह्म है, वही रचनाका, ठहरनेका और विनाशका कारण बन रहा है अथवा जैसे चन्द्रकान्तमणिसे जल निकलता है तो उस जलकी रचनाका मूल हेतु तो चन्द्रकान्तमणि है इसी तरह यह सब व्यक्त दृष्टिगोचर हो रहा है पर इस समस्त लोकका कारणभूत इसकी रचनाका साधन एक परम ब्रह्म ही है। अथवा जैसे बटका बीज अंकुरोंका कारणभूत है। वे अंकुर क्या बीजसे न्यारे हैं? वह एक बीजका ही फैलाव है। इसी प्रकार यह सारा जगत ब्रह्मका ही फैलाव है। जितने भी जीव हैं जन्ममरण करने वाले समस्त प्राणियोंका कारणभूम यह ब्रह्म ही है।

ब्रह्मस्वरूपके ज्ञानकी प्रमाणता व कल्याणकारिताका कथन—इस ब्रह्मस्वरूपका ग्रहण करने वाला जो ज्ञान है वह तो प्रमाण है और सब पदार्थोंका ग्रहण करने वाले ये सब ज्ञान अप्रमाण हैं क्योंकि ये सारे पदार्थ ही मिथ्या हैं। तो मिथ्या पदार्थको सम्यक् रूपसे जाने वह ज्ञान मिथ्या है और अप्रमाण है। अभेद ही एक तत्त्व है। भेद तो विकल्प और मूढतामें प्रकट होता है। जो इस जगतको, जो इस समग्र लोकको भेदरूपसे देखा करते हैं उनकी तो निन्दा की गई है। 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।' उपनिषदमें यह बताया है कि वह पुरुष मृत्युके द्वारा मृत्युको प्राप्त होता है जो यहाँ कुछ भी नाना निरखता है, जो भेदरूपसे नाना रूपमें इस लोकको निरखता है, उसकी मृत्यु होती रहती है। इसका तात्पर्य यह है कि जो एक अभेद चैतन्यमात्र ब्रह्मस्वरूपको देखता है वह तो मृत्युसे बचता है, अमर होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, उस ब्रह्ममें मग्न हो जाता है अथवा जिसे निर्वाण कहते हैं ऐसी स्थितिको प्राप्त हो जाता हैं और जो यहाँ कुछ नाना देखता रहता है, यह पशु है, पक्षी है, मनुष्य है, मकान है, रकम है, वैभव है, यों कुछ नानारूप निरखता रहता है वह संसारमें जन्म-मरण करता हुआ बराबर मृत्युको प्राप्त होता रहता है।

अविद्यावासनासे भेदप्रतीतिकी मान्यता भेद तत्त्व नहीं है। एक अभेद ही स्वरूप है, और अभेदको बताने वाले इस आम्नायकी आगमकी प्रत्यक्षसे बाधा नहीं होती क्योंकि प्रत्यक्ष भी अभेदरूपको भावरूपको ही ग्रहण करता है। आगम भी अभेदकी बात कह रहा है और प्रत्यक्ष भी अभेदको सिद्ध करता है। आखें खुलनेके बाद जो सबसे पहिले प्रकाश मिला, झांकी मिली, वह अभेदरूप झांकी हुआ करती है। बादमें चूंकि हम अज्ञानमें बहुत बसे हैं और पदार्थोंके भेदका हमारेमें संस्कार बसा है तो बहुत ही जल्दी जिसमें लोगोंको पता ही नहीं पड़ पाता कि हमने वस्तुस्वरूप तो तब जाना था, अब तो हम मिथ्या जान रहे हैं, ऐसा भेद भी नहीं कर पाते, इतनी ही जल्दी अविद्या वासनाके कारण यह समस्त जगत भिन्न भिन्नरूप ज्ञात होने लगता है, और आगममें तो यह कहा ही है --आहुर्विधातृ प्रत्यक्षं न निषेद्घृ विपश्चितः। प्रत्यक्ष तो विधिका प्रतिपादन करता है निषेधका प्रतिपादन नहीं करता। जैसे किसीने कहा कि उस कमरेमें चौकी रखी है उठा लावो और चौकी वहाँ थी नहीं तो वह जाकर देखता है और कहता है कि यहाँ तो चौकी नहीं है। तो उससे पूछा—क्या तुमने उस सारे कमरेको खूब गौरसे देखा ? हाँ हाँ हमने खूब गौरसे देखा कि वहाँ चौकी नहीं है। तो चौकी नहीं है वहाँ क्या यह बात भी आँखोंसे देखा ? आँखोंसे तो कमरा ही देखा। आँखोंसे क्या 'न' भी देखा करता है कोई ? आंखोंसे तो 'है' दीखा करता है।

प्रत्यक्षज्ञानोंका अभेद विधि विषयका मन्तव्य—भैया ! जितने भी प्रत्यक्ष ज्ञान हैं वे सब है' रूपमें दीखा करते हैं। फिर न की तो कल्पना बनी कि वहां चौकी नहीं है। न' को तर्क वितर्कोंसे जाननेका अभ्यास पड़ा हुआ है इसलिए दिमाग नहीं लगाना पड़ता, किन्तु 'न' न समझमें आता न प्रत्यक्ष होता। प्रत्यक्षसे तो अस्तित्व ही ज्ञात होता है, तब जब हमने प्रत्यक्षसे यहाँ कुछ पदार्थ देखा और देखनेके साथ यदि हम यह ज्ञान करते हैं कि यह खम्भा है तो इसमें यह बात बसी है कि नहीं कि और चीज नहीं है। औरका 'न' किया ना। तो जहाँ न की बात आ जाय वह ज्ञान सही नहीं है, प्रत्यक्ष नहीं है। है है ही समझते रहें तहाँ तक तो प्रत्यक्षकी बात है, और जहाँ न समझा, भेद समझा, व्यक्ति समझा तो वह ज्ञान अप्रमाण हो गया। व्यक्तिका समझना निषेधका समझना है। निषेध अभिप्रायमें आये बिना व्यक्ति समझ में न आयगा। यह अमुक व्यक्ति है ऐसा एक मर्यादित अस्तित्त्वमें बँधा हुआ कोई एक समझमें आ रहा है तो मर्यादाका तो यही अर्थ है ना, कि इससे बाहर यह नहीं है और बाहरसे अलग यह है। तो निषेध चित्तमें आये बिना व्यक्ति समझमें नहीं आता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो ये जो नाना व्यक्ति ज्ञानमें आ रहे हैं, यह भींट है, यह चौकी है, यह पुस्तक है, यह मनुष्य है, यह अमुक पशु है ये सब भेद मिथ्या हैं, इनका ज्ञान करना प्रमाण नहीं है। प्रमाणभूत ज्ञान तो वही है जो ब्रह्मस्वरूपको जाने। परमात्मतत्त्वको जाने।

ब्रह्माद्वैतवादी द्वारा पदार्थभेदके कारणोंका तीन विकल्पों द्वारा ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि तुमको जो इन पदार्थोंमें भेद नजर आया है यह अमुक चीज है, यह अमुक चीज है ऐसा भेद तुम्हारी समझमें क्यों आया? क्या इसलिए समझमें आया कि देशभेद है, अमुक चीज इस जगह है, अमुक इस जगह है यों अलग अलग जगहमें पदार्थ हैं इससे भेद नजर आता है क्या यह बात है? अथवा कालभेदसे पदार्थका भेद समझा जा रहा है? वह कल था, अब यह आज है, यह कल होगा इस प्रकार क्या समयके भेदसे पदार्थका भेद नजरमें आया? अथवा पदार्थमें आकारका भेद है — यह लम्बा है, यह चौड़ा है, यह गोल है। चौकोर है, आदिक आकार नजरमें आ रहे हैं इस कारण तुम पदार्थोंमें भेद मानते हो? ती बातें ब्रह्माद्वैतवादीने पूछी हैं जो इन सब पदार्थोंको भिन्न भिन्न अस्तित्वमें मानता है अथवा यों कहो कि जैनियोंसे ही पूछा कि तुम भेद क्यों मानते हो?

देशभेदसे पदार्थभेद असिद्ध होनेका मन्तव्य — क्या देशभेदके कारण भेद है! यह बात तो यों युक्त नहीं है कि जो स्वरूपसे अभिन्न है उसमें देशभेद होनेपर भी भेद नहीं बनता। यह सब तो एक ब्रह्मस्वरूप ही माना गया है, एक सत् स्वरूप। सत्का क्या स्वरूप है! अस्तित्व होना। वह अस्तित्व एक है या नाना हैं? अस्तित्व तो एक है। नानापन तो एक मिथ्यावाद है। यह कथन ब्रह्माद्वैतवादियोंका इस तरह एक दृष्टान्त लेकर समझिये कि जैसे पूछा जाय कि चैतन्यस्वरूप क्या है? चैतन्यका जो स्वरूप है वह उस स्वरूपमें नहीं है कि जिसे हम अलग-अलग जीवोंमें घटा सकें। मेरा जैसा चैतन्य है यह चैतन्यस्वरूप है। जहाँ मेरा विशेषण लगालो वहाँ तत्त्वका शुद्ध स्वरूप मिटा दिया। अब वहाँ एक व्यक्ति, गुणपर्यायका पिण्ड ध्यानमें आने लगा तो चैतन्य स्वरूप नाना नहीं होते।

अभेदसाधनाके लिये कुछ दृष्टान्तोंका आपातन — जैसे काले वर्णका स्वरूप क्या है? यदि चीजें उठा उठा कर बताने लगें जो कुछ काली चीजें हों, तो वह काले वर्णका स्वरूप नहीं आया, वह एक पदार्थ आया, व्यक्ति आया। काला वर्ण आ गया, पर काले वर्णका स्वरूप अभी नहीं आया। काले वर्णका जो स्वरूप होगा वह स्वच्छंद एक निर्विकल्प किसी व्यक्तिकी मर्यादाको न लगाने वाला स्वरूप होगा। इसी प्रकार चैतन्यका स्वरूप क्या है? वह स्वरूप किसी मर्यादाको, व्यक्तिको लेकर न मिलेगा। वह तो एक चैतन्य प्रकाशमात्र है। तो जैसे ये चैतन्य स्वरूप नाना तो नहीं हैं। एक हैं ऐसे ही ब्रह्माद्वैतवादी अपना तत्त्व मात्र एक आत्मा ही कह रहे हैं। इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रसङ्गमें थोड़ा स्याद्वादीकी भी बात सुनिये । स्याद्वादी नय विभागके कारण इस ही चीजको उनसे भी और अधिक ऊँचे ले जा सकते हैं। चैतन्यस्वरूप एक है, किन्तु स्याद्वादवादी कहते हैं कि चैतन्यस्वरूप एक है ऐसा एकपना लादेनेसे भी चैतन्यस्वरूप बिगड़ जाता है । वह तो केवल अनुभूतिका तत्त्व है, अनुभव करिये उसके बारेमें वह चैतन्यस्वरूप एक है अथवा नाना है ऐसी जीभ मत हिलावो । उस ही चैतन्यस्वरूपका लक्ष्य करके एक ब्रह्माद्वैतका सिद्धान्त प्रकट हुआ है ।

देशभेदसे पदार्थभेद करनेकी अशक्यताका प्रदर्शन प्रकरणमें यह कहा जा रहा है कि लोगोंको जो ये पदार्थ भिन्न-भि नजर आते हैं, नाना नजर आते हैं क्या यह देशके भेदसे इन पदार्थोंका भेद है ? देशभेदसे तो भेद करना मिथ्या है, क्यों कि जैसे एक आकाश है, स्वरूपसे अभिन्न है, उस आकाशमें यह भेद करना कि यह इनके घरका आकाश है, यह मेरे घरका आकाश है, त ऐसा कह भले ही लो, किन्तु ऐसा श्रद्धान करना मिथ्या है । आकाश तो स्वरूपसे अभिन्न है फिर घर भींट आदिक के भेदसे आकाशमें भेद न पड़ जायगा, क्योंकि भींटका भेद आकाशमें न प्रवेश करेगा । इस प्रकार देशका भेद अर्थोमें प्रवेश नहीं कर सकता । देश न्यारे-न्यारे हैं । तो रहें, देशके भेदसे अर्थमें भेद नहीं बनता । इसे यों समझिये थोड़ा जैनसिद्धान्तका एक दृष्टान्त लेकर । जिस जिस स्थानमें जीव हैं उसी उसी स्थानमें पुद्गल हैं । धर्म, अधर्म, आकाश,काल ये ६ प्रकारके द्रव्य हैं । तो एक जगह इतने पदार्थ आ जानेसे क्या वे एक हो गए ? देशका अभेद होनेसे पदार्थ एक तो नहीं हो जाता । तो इसी प्रकार देश का भेद होनेसे भी वे पदार्थ अनेक नहीं हुए ।

देशभेदकी साधनामें विकल्पोंका उत्थापन ब्रह्माद्वैतवादी कर रहे हैं — अच्छा बताओ यह देशभेद हो कैसे गया ? क्या अन्य देशके भेदसे देशभेद हुआ या स्वतः हुआ ? पूछा यह गया था कि ये पदार्थ जो नाना नजर आ रहे हैं ये भिन्न भिन्न क्यों नजर आ रहे हैं ? क्या देशके भेदसे भिन्न-भिन्न नजर आ रहे हैं ? तो देश भी जो भिन्न-भिन्न नजर आ रहे हैं यह अमुक स्थान है, यह अमुक स्थान है, ये भी क्यों नजर आ रहे हैं ? इसमें कारण अन्य देशभेद मानोगे तब तो अनवस्था दोष आयगा । फिर वह देशभेद अन्य देशभेदसे हुआ, फिर वे भिन्न-भिन्न स्थान अन्य देशभेदसे हुए । और, यदि स्वतः ही मानते हो तो इन पदार्थोंको भिन्न-भिन्न समझानेके लिए देशभेद से ही बताना किन्तु सीधा ही भाव भेद माननेको बात न बोलना । भेदकी कल्पना करनेका प्रयास ही क्यों करे ? इस कारण यह बात युक्त है कि ये जो पदार्थोंमें भेद नजर आ रहे हैं यह सब मिथ्या है । ये पदार्थ देशभेदके कारण भी भिन्न-भिन्न नहीं बन सकते हैं ।

कालभेदसे पदार्थभेद न होनेका मन्तव्य—कालभेदसे भी भिन्न-भिन्न नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बन सकते जैसे कालभेदसे लोग भिन्न–भिन्न कहा करते हैं कि यह चीज कल हुई थी अब यह चीज आज नहीं है, यह कल हो जायगी इसप्रकार जो समयके भेदसे पदार्थोंमें भेद माना है तो वह भी पूरा नहीं पड़ सकता, क्योंकि कालका भेद ही प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं है। प्रत्यक्ष तो केवल सामने रहने वाली वस्तुमात्रको, अस्तित्त्व मात्रको जानता है, इसमें कालभेद नहीं है। प्रत्यक्षसे गई गुजरी बात जाननेमें नहीं आया करती। प्रत्यक्षका विषय अतीत भविष्यकाल नहीं है अथवा उन कालोंमें रहने वाले जो भिन्न भिन्न पदार्थ हैं उनका भेद प्रत्यक्षका विषय नहीं है, अतएव कालभेदसे भी हम इन पदार्थोंको भिन्न–भिन्न नहीं मान सकते।

आकारभेदसे भी पदार्थभेदकी अमान्यता - इसी तरह आकारभेदसे भी हम इन पदार्थोंको भिन्न–भिन्न नहीं कह सकते। आकारभेद पदार्थोंका भेदक है क्या यह किसी भिन्न प्रमाणसे जाना जाता है? अन्तर्वस्तु और बाह्यवस्तु इनके सिवाय और कुछ भी प्रतिभासमान नहीं होता है। न अन्य कोई प्रमाणका स्वरूप है। जो कुछ भी ज्ञानमें आता है वह सब एक प्रतिभासमय एक ब्रह्मका ही स्वरूप है, अतएव न आकारभेदसे भी अर्थका भेद नजर आता है। जितने भी भिन्न–भिन्न पदार्थ दृष्टि-गोचर होते हैं वे सब मिथ्या हैं और मिथ्याका ज्ञान करना अप्रमाण है। एक परमात्मस्वरूपका ही ज्ञान करने वाला जो ज्ञान है वही प्रमाणभूत है, इस प्रकार ब्रह्माद्वैतवादी अपूर्व अर्थके ज्ञानकी प्रमाणताका खण्डन कर रहे हैं। इस अद्वैतवादके सिद्धान्तमें दृश्यमान, तर्क्यमाण समस्त पदार्थ मिथ्या हैं, मिथ्या ही नहीं, असत् हैं एक अभेद निरंश नित्य अपरिणामी आत्मा है, ब्रह्म है। उस अभेद परमात्मत्वमात्र तत्त्वकी सिद्धि इसलिये एक दार्शनिक द्वारा की जा रही है कि उसे प्रमाणके स्वरूपमें दिये गये "अपूर्व अर्थ" इस विशेषणसे विरोध है, क्योंकि यह दार्शनिक सर्वथा अभेदवादी है।

वस्तुस्वरूपकी निर्दोष व्यवस्था —वस्तु स्वरूपकी निर्दोष व्यवस्था तो यह है कि एक पदार्थ इतना हुआ करता है जितना कि वह अपनेमें अखण्ड हो। और, अखण्ड होनेके प्रतिफलस्वरूप अपनेमें अपने आपका परिणमन करता हो। अपनेसे बाहर कहीं परिणमन न हो, बाहरसे किसी ओरसे अपनेमें परिणमन न आये केवल अपने आप जितने प्रदेशमें हैं उतनेको एक वस्तु कहते हैं इस दृष्टिसे जगतमें अनन्त वस्तुयें हैं। जिन सब वस्तुवोंको हम जातिरूपमें विभाजित करें तो उन सबकी ६ जातियां बनती हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जिनमें चेतना पायी जाय, जो जानन देखनहार हों ऐसे जितने पदार्थ हैं वे सब जीव कहलाते हैं। जिनमें चेतना नहीं है, और रूप, रस, गंध, स्पर्श है वे सब पुद्गल जातिमें गिने जाते हैं। ये दो जातिके पदार्थ तो व्यवहारमें बहुत आते हैं। इनके अतिरिक्त ४ जातियां और हैं एक धर्मद्रव्य — जो जीव और पुद्गलके चलनेमें सहायक हो, निमित्त कारण हो वह एक ही है। एक अधर्म द्रव्य जो जीव और पुद्गलके ठहरनेमें निमित्त कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो, एक आकाश द्रव्य जिसमें पदार्थ रहा करे और एक कालद्रव्य जिसमें असंख्यात कालद्रव्य हैं, वे लोकालोकके एक-एक प्रदेशपर अवस्थित हैं और अपने प्रदेशपर जो भी पदार्थ स्थित हो उसके परिणमनके कारण हैं। इस तरह छ जातिके पदार्थ हैं।

प्रतिव्यक्तिगत भेदका प्रकाश—जीव और पुद्गलमें तो अनन्त व्यक्तियां स्पष्ट ही है अनन्त जीव हैं और अनन्त पुद्गल है। वस्तुस्वरूपकी व्यवस्था तो ऐसी है, किन्तु ब्रह्माद्वैतवादी यहाँ यह कह रहे हैं कि ये भिन्न भिन्न पदार्थ मालूम हुए ना, यह सब अज्ञानसे प्रतीत होता है। वास्तवमें तो एक ब्रह्मस्वरूप ही है। वह ब्रह्मस्वरूप निर्विकल्प हैं, एक सत्तामात्र है। जैसा कि कुछ भी जानते समयसे पहिले जो कुछ एक सामान्य प्रतिभास होता है उस रूप यह एक ब्रह्म है। इस सिद्धिके सिलसिले में ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि यदि कोई लोग जैन या अन्य कोई भेदवादी लोग यह कहें कि हमें भेद सही तो मालूम पड़ रहा है जैसे अपने आप जीवोंके सम्बन्धमें अहंका प्रत्यय हुआ करता है मैं हूँ। मैं तो इस प्रकार मैं मैं के ज्ञानमें भेद तो पड़ा हुआ है।

अद्वैतवादमें अहं प्रत्ययसे भी परमार्थ सत्के अलक्ष्यका प्रतिपादन—इस प्रकार ब्रह्माद्वैतवादी यह उत्तर दे रहे हैं कि यह बात सही नहीं है क्योंकि बहुतसे लोग जो अहं अहं कहकर अपना अलग अलग अस्तित्व समझ रहे हैं, उसमें शुद्ध बोधका प्रतिभास नहीं है। जिसको अहं करके माना है वह स्वयं माया है। मैं सुखी हूँ। मैं दुःखी हूं। मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हु आदिक रूपसे जो हम लोग मैं मैं का अनुभव करते हैं तो वह सुख आदिकका या शरीरका आलम्बन करके अनुभव करते हैं। जो सत्य ब्रह्मस्वरूप है उसका आश्रय करके उसका लक्ष्य लेकर लोग अहं अहं नहीं बोलते तो यहाँ अभेद तत्त्व सिद्ध किया जा रहा है। अहंसे जो कुछ भी लोग ख्याल करते हैं वह किसी अन्य पदार्थका ख्याल करके अहं बोला करते हैं, उसअहंसे ब्रह्मतत्त्वपरमात्मस्वरूप नहीं पकड़ा जा रहा है। मैं सुखी हूँ तो सुखपर लक्ष्य देकर सुख रूप जो परिणमने वाला है इस तरह विकल्प और कल्पनाओंमें जो रमने वाला है वह मैं हूँ तो ऐसा वह मैं मायारूप हूं, शुद्ध ब्रह्म नहीं हूं। बोध स्वरूपका आलम्बन करके उसका कोई अनुभव नहीं करता। वहां तो निर्विकल्पता आती है। जैसे कि जैन लोग भी तो मिथ्यात्वके उदयमें जीव जिस जिसको अहं अहं से ग्रहण करते हैं वे सब भी तो पर्याय हैं, मिथ्या हैं। तो यहाँ ब्रह्माद्वैतवादमें जिस-जिस को जुदा-जुदा व्यक्तिरूपमें मैं-मैं अनुभव करते हैं वह सब भेद है, मिथ्या है।

आकारभेदसे भी पदार्थोंके भेदके अभावका कथन—यहाँ ब्रह्मवादी भेदवादियोंसे पूछ रहे हैं कि तुम क्या आकारभेदसे पदार्थोंमें भेद मालूम करते हो तो आकार भेदपरसे जाना जाता है या स्वतः जाना जाता है? परसे जाना जाता है इस विषयमें यहाँ तक ये आपत्तियाँ दीं। यदि यह कहो कि ये पदार्थ सभीके सभी तो अपना-अपना जुदा-जुदा आकार लिए हुए हैं स्वयं अपने आकारभेदको जानते रहते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि ऐसा कहो तो ब्रह्मवादी कह रहे हैं कि इस तरहसे तो समस्त पदार्थ अपने ही प्रकाशमें नियत हैं यह आपत्ति आयगी। और ऐसा होनेपर तो जिसे हम चस्मा कह कह रहे हैं, उसके स्वरूपने अपने आकार और स्वरूपको जाना ! जिसे मैं कह रहा हूँ उसने स्वयं अपने आपके आकारको जाना। तब कोई भी पदार्थ किसी दूसरेको जान तो न सका। हम आप परपदार्थोंके सम्बन्धमें कुछ निर्णय चाह रहे हैं और हम केवल अपने तक ही जान पाते हैं तो फिर निर्णय कैसे बनेगा, आकारभेद कैसे सिद्ध होगा ? यों देशभेद कालभेदसे और आकारभेदसे भी पदार्थोंमें भेद सिद्ध नहीं होता। एक अभेद ही तत्त्व है।

समयानुरूप द्वैत और अद्वैतके कथनका व्यवहार—देखिये ! आज कल इस सिद्धान्तका प्रचार तो बहुत है, पर कुछ ऐसे अटपटे ढङ्गमें है कि वही पुरुष पहिले बड़ा भेद सिद्ध कर रहा और थोड़ी देर बादमें उसका दिमाग बदल जाता है तो अभेदको सिद्ध करने लगता, इस तरह भी परम्परासे और रूढ़िसे अद्वैतके मानने वाले आज भी हैं। जैसे अभी चर्चा कर रहे हों कि एक ईश्वरने इन सब जीवोंको बनाया, ये सब न्यारे-न्यारे हैं, पुद्गल न्यारे-न्यारे हैं। ये सब पदार्थ सत्त्व गुण, रजोगुण, तमोगुणकर सहित हैं। सबकी जुदी-जुदी खूब सत्ता मानने जैसी बात कहते हैं। थोड़ी ही देरमें खबर आ जाय कि पंडिताई तो इसमें और ज्यादा समझी जाती है कि एक ब्रह्म है, अन्य कुछ नहीं है ऐसा कहना चाहिए तो इस बुद्धिसे प्रेरित होकर फिर यों बोलने लगते हैं। बहुत बड़ी पंडिताई बुद्धिमानीकी बात मानी जाती है। तो इस कथनमें मान ली जाती है। जैसे कि अभी कहा है सब कुछ एक ही अभेदस्वरूप ब्रह्म है और कहते ही हैं सब। सब कुछ एक परमात्मतत्त्व हैं, अन्य तो सब उसकी माया है। इस अभेदवादको यहाँ सिद्ध किया जा रहा है।

अविद्यारूप शास्त्र विद्याप्राप्तिके हेतुपर आशङ्का—भैया ! जितने भी कथन इस प्रसङ्गमें अभी कहे जा रहे हैं वे सब एक ब्रह्माद्वैतवादीके हैं। वे दूसरोंकी ओरसे एक शङ्का उठाते हैं कि यदि जैन आदिक भेद मानने वाले दार्शनिक ऐसा कहें कि तुम्हारा यह सर्व विश्व एकस्वरूप ब्रह्म, यदि विद्यास्वभावरूप है ज्ञानरूप, बोध स्वभाव है और वही है सब यह संसारमें बोधस्वरूप। ब्रह्मके अतिरिक्त तो कुछ संसार नाना नहीं तो जब विद्यारूप ही हैं तो फिर इन जीवोंको मोक्षके लिए शास्त्रोंमें प्रवृत्ति क्यों करायी जाती है ? जब हम सब ज्ञानरूप ही हैं, बोधरूप हो हैं, ब्रह्म ही हैं तो फिर शास्त्रोंकी प्रवृत्ति व्यर्थ बन जायगी। क्योंकि शास्त्रोंकी प्रवृत्ति तो तब करे जब अविद्यासे हटनेका और विद्यामें लगनेका स्वभाव पड़ा हो या हम लोगोंको जरूरत हो, हम सब तो विद्यारूप हैं और शास्त्र हैं अविद्यारूप और अविद्यारूप शास्त्र विद्यारूप ब्रह्मको कैसे प्राप्त करा दें ? एक ब्रह्म है उसके अतिरिक्त जो कुछ है वह सब अज्ञान है मायारूप है, शास्त्र भी मायारूप हो गये और सारे उपदेश भी मायारूप हैं, समस्त

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यवहार माया है। तो शास्त्रोंकी प्रवृत्ति फिर क्यों की जाय ? कहीं अविद्यासे विद्या भी मिला करती है ?

अद्वैतवादमें शास्त्रकी अव्यर्थताका समाधान—इस प्रकार ब्रह्माद्वैतवादी उत्तर देते हैं कि विद्यास्वभाव होनेपर भी शास्त्रादिककी व्यर्थता नहीं है। शास्त्र विद्यामें नहीं लगाते है, किन्तु जितना अज्ञान बसा हुआ है उसका परिहार कराते हैं। यदि यह मैं विद्यास्वभाव न होता तो अनेक प्रयत्न करनेपर भी अविद्याका परिहार नहीं हो सकता था। हूँ मैं विद्यास्वभाव लेकिन शास्त्रकी प्रवृत्ति हमें यों करनी पड़ती कि अविद्याकी प्रवृत्तियोंका, अज्ञानके परिणमनोंका परिहार हो जाय। अज्ञान हटानेके लिए हम शास्त्र पढ़ते हैं, ज्ञान बनानेके लिए हम शास्त्र नहीं पढ़ते। ऐसा ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं क्योंकि यदि यह कह बैठें कि हम ज्ञान पैदा करनेके लिए शास्त्र पढ़ते हैं तो इसका अर्थ यह हो जायगा कि हम ज्ञानरूप नहीं हैं। शास्त्रोंका हम ज्ञान बनाते है तो शास्त्रोंकी प्रवृत्ति ज्ञानविकासमें कारण नहीं है किन्तु अज्ञानके हटानेमें कारण है, क्यों कि अविद्या ब्रह्मसे अलग वास्तवमें कुछ नहीं है। अविद्याकी मायाकी सत्ता नहीं हुआ करती इस कारण यह अविद्या दूर हो जाती है। यदि वास्तवमें अविद्याका सद्भाव मान लें जैसा कि ब्रह्मस्वरूप है, परमात्मस्वरूप है उसी तरह माया भी कुछ होती है यों यदि सत्ता मान लें तो फिर उसे कभी हटाया हो न जा सकेगा। किसी भी सत्ता का अभाव कभी नहीं हुआ करता। इस कारण शास्त्रोंकी प्रवृत्ति अविद्याके हटानेके लिए है और ऐसा तो सभी दार्शनिक मानते है कि मुमुक्षुवोंका जितना भी प्रयत्न है, निर्वाण प्राप्त करने वालोंका जितना भी प्रयत्न है वह सब अविद्याके उच्छेदके लिए है। मोह रागद्वेष अज्ञान जो कि अतात्त्विक है उनके विनाशके लिए है।

अद्वैतवादका प्रयोजन—भैया ! बहुत कुछ अंशों तक ब्रह्माद्वैतवादमें हम अपना दिमाग लगायें, उसकी बातको मानकर चलें तो तत्काल फायदा तो जरूर होता है कि बहुतसे विकल्प हमारे हटने लगते हैं। जब हम जानें कि यह मायारूप है। वास्तविक नहीं है, किन्तु एक अकल्पनीय ब्रह्मस्वरूप है वह ही सबका मूल हैं, इसतरह जब हम एक अकल्पनीय ब्रह्मस्वरूपपर दृष्टि देते हैं तो ये सब विकल्प हमारे शान्तसे होने लगते हैं, लेकिन ऐसा उपयोग बदल लेना, इस तरहका शान्त हो लेना यह देर तक नहीं टिक पाता है तथा अन्ततो गत्वा आत्ममग्न नहीं कर सकता। यों तो जैसे किसी लड़केको हुचकी आ रही हों और उसको कोई अचम्भे वाली बात कोई सुना दे या उसके ही लिए कोई ऐसा सुना दे कि तुम उसके घरमें क्यों सूनेमें गये थे, तुम वहाँ क्यों चोरी करने गए थे। तो उसका कुछ उपयोग बदल जाता है और उसकी हिचकी थोड़ी देरको बन्द हो जाती है। और, ऐसा लोग करते भी हैं। कुछ देर बादमें फिर वह हिचकी चलने लगती है, वह तो रोग ही है। इसीतरह समस्त सत्पदार्थोंका अभाव मान लेनेपर और मात्र एक कोई ब्रह्म मान लेनेपर कुछ कल्पनाएँ तो शान्त हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाती हैं कुछ अतिव्यक्त मोह रागद्वेषकी परिणतियां मिट तो जाती हैं पर वहां फिट यों नहीं बैठ पाता है कि ऐसा सोचनेमें सोचने वालेने स्वमें अपने ज्ञानको नही पाया। यदि उस ही ब्रह्मस्वरूपको केवल एक अपने आपमें इस स्वभावको सोचता कि मैं तो चैतन्यमात्र हूं और जो कुछ भी यहाँ परिणमन बनता है वह सब मायारूप है इस प्रकार अपने आपकी इन विभाव सृष्टियोंको मायारूप समझकर उनसे अपनेको हटाकर अपने एक ज्ञानस्वभावमें चित्त देता तो सोचने वाला भी यही है और अपने आपके मूलकी बात सोची तो यह इसमें मग्न हो जाता। हम उस स्वरूपको समझनेके लिए अपनेसे भिन्न अन्यत्र दृष्टि लगायें कि इन सबका उपादानभूत कोई एक ब्रह्म है तो अन्यत्र दृष्टि लगानेसे अपने आपमें स्वरूपमग्नता नहीं हो पाती है इतना अन्तर है।

अनादि अविद्याके उच्छेदका तर्क—इस प्रसङ्गमें ब्रह्माद्वैतसे कोई प्रश्न कर रहा है कि अविद्या भी तो अनादिकालसे चली आयी है। जैसे ब्रह्मस्वरूप अनादि है तो यह विद्या भी अनादि है और अनादिसे चली आयी हुई अविद्याका उच्छेद कैसे हो सकता है। इसपर ब्रह्माद्वैतवादने उत्तर दिया कि देखो तुम्हारे यहाँ भी तो प्रागभाव अनादिसे चला आया है. उसका भी तो विनाश होता है। कैसी सुन्दर युक्तिसे उत्तर दे रहे हैं। प्रागभावका अर्थ है जो चीज बनती है उससे पहिले वह चीज नहीं रहती ऐसा तो सर्वत्र है ही। जैसे आज यह घड़ा बन रहा है तो इस घड़ेका आजसे पहिले अनन्तकाल तक अभाव था। तो प्रागभावका समय है अनन्तकाल अर्थात् प्रागभाव अनादिसे है। सो वहाँ भी जब घड़ा बन गया तो प्रागभाव मिट गया। जो इस समय रोटी बनायी जा रही हो उस रोटीका पहिले अभाव है कि नहीं ? तो कब तक अभाव रहा ? आज जो ८ बजे रोटी बन रही है उसका अभाव ७ बजे है कि नहीं ? ७ बजे रोटी तो न थी। इसीप्रकार १० वर्ष पहिले, सैकड़ोंसागर पहिले, और अनन्तकाल पहिले कभी भी इस रोटीका सद्भाव न था, अब बन रही है रोटी। तो रोटीका प्रागभाव रहा अनन्तकाल तक। रोटी बननेपर अनादिसे चला हुआ रोटीका प्रागभाव मिट जाता ना। इस तरह अनादिकालसे चली आयी हुई अविद्याका भी विनाश हो जाता है, और जैसे यों समझिये कि घड़ा बना तो घड़ेसे पहिले घड़ेका प्रागभाव था तो उस प्रागभावका नाम रख दीजिए अघट। घट तो हुआ एक मिनटमें और अघट रहा अनन्तकाल तक। तो उस घटका सद्भाव अलगसे क्या है ? घटका प्रागभाव ही अघट है इसीतरह अविद्याका सद्भाव और कुछ नहीं है, विद्याका प्रागभाव ही अविद्या है। जब तत्त्वज्ञानरूप विद्याकी उत्पत्ति होती है तो अविद्या अपने आप नष्ट हो जाती है जैसे कि घड़ा बननेहर घड़ेका अभाव अपने आप दूर हो जाता है।

ब्रह्म और अविद्यामें भिन्नाभिन्नादि विचार— अद्वैतवादी कह रहे हैं कि जो भेदवादने यह पूछा था कि अविद्या ब्रह्मसे अभिन्न है कि भिन्न है, सो भिन्न अभिन्न के विकल्प वस्तुमें हुआ करते हैं। अविद्या तो अवस्तु है, इसमें भिन्न अभिन्नका विकल्प

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करना बुद्धिमानी नहीं है। अवस्तुरूप अविद्यामें ये विकल्प नहीं उठाये जा सकते, यह सब कुछ अविद्या माया है, मिथ्याप्रतिभास है। जैन सिद्धान्तमें भी तो अपने शरीरको मायारूप बताते, औपाधिक चीज बताते, निमित्त और उपादानपर दृष्टि दें तो न जीव की यह चीज है न पुद्गलकी यह चीज है। जीव और पुद्गलके परस्पर निमित्त नैमित्तिक भावमें यह सारा संसार दिख रहा है। तो हम इन सबको किसी एककी बात नहीं कह सकते।

भैया ! जैन सिद्धान्तमें तो नय विभाग है। द्रव्य गुण पर्यायकी व्यवस्था है किन्तु अद्वैतवादीसिद्धान्तमें द्रव्य गुण पर्यायकी व्यवस्था नहीं है। जो ब्रह्म है वह सदैव अपरिणामी है। ब्रह्मका यह सब कुछ परिणमन नहीं है, किन्तु मायाका है, प्रकृतिका है, यह सब परिणमन झूठ है, इन सबकी सत्ता मिथ्या है, एक ब्रह्मरूप है इसप्रकार अपरिणामी नित्य निरंश एक स्वभावी ब्रह्मतत्त्वकी सिद्धि की जा रही है।

शास्त्रमननादिकी अविद्यामें स्वपरअविद्याके प्रशमनके सामर्थ्यका मन्तव्य—अद्वैतवादीसे अब भेदवादी पूछ रहे हैं कि हम जो आत्माकी बात सुनते हैं, आत्मतत्त्वका मनन करते हैं, आत्मतत्त्वका ध्यान करते हैं यह तो ब्रह्मसे भिन्न है ना? हाँ ब्रह्मसे भिन्न है। तो यह अविद्यारूप हुआ ना। आत्माकी कथनी सुनना, चर्चा करना, आत्माका मनन करना, ध्यान करना जब ये सब अविद्या हैं तो उन अविद्यास्वभावी प्रयत्नोंसे विद्याकी प्राप्ति कैसे बन सकेगी ? ब्रह्माद्वैतवादी इसपर उत्तर देते हैं और कितने तर्कके साथ उत्तर देते हैं। आप यह समझेंगे कि ठीक ही तो कह रहे है। उनका उत्तर है कि जैसे किसी पानीमें गंदापन है, कीचड़ भरा हुआ है, धूलका विशेष सम्बन्ध है ऐसे उस क्लुषित जलमें जब कोई निर्मली, चूर्ण वगैरह डालते हैं जो कि उस पानीको साफ करती है तो वहाँ वह चूर्ण उस धूलको भी नीचे दबा देता है और वह चूर्ण खुद भी नीचे दब जाता है। तो जो गन्दे जलके उस कीचको दबाने के लिए एक दवाई डालते हैं तो उस दवाईका यह काम है कि धूलको नीचे दबाकर खुद भी नीचे दब जाय। इसी तरह ये आत्माके ध्यान मनन आदिक तो जरूर हैं किन्तु इस अविद्याका इतना काम है कि भिन्न पदार्थ निरखनेकी अविद्याको दबाकर खुद दब जाय।

स्वपरप्रशामनपर विषका एक और उदाहरण—और भी देखिये किसी विषको दूर करनेके लिए विष डालते हैं, विषैली चीजका विष दूर करनेके लिए विष प्रयोग करते हैं तो उस विषका यह काम है कि दूसरे विषको शान्त कर दे और खुद भी शान्त हो जाय। तो जैसे विष खुद शान्त होकर दूसरे विषको शान्त कर देता है इसीप्रकार यह अविद्या भी ज्ञानध्यान स्वाध्याय ये सब भेदभावको शान्त कराकर खुद शान्त हो जाती है। ऐसा इस अविद्यामें प्रभाव है। यह अविद्या अपने आपमें उत्पन्न हुआ जो भाव है, अनेक प्रकारके जो दुराग्रह हैं, यह चौकी है, यह कमण्डल है, यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुरुष है, यह पक्षी है आदिक जो भेद डालनेके आग्रह हैं उनको भी यह स्वाध्यायरूपी अविद्या शान्त कर देती है और यह अविद्या स्वयं शान्त हो जाती है। और यह जीव यह ब्रह्म अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है। तो अविद्याका यह काम है। यह शंका नहीं कर सकते कि फिर शास्त्र पढ़ना व्यर्थ है। शास्त्र पढ़नेका जो ज्ञान है इसे भी ब्रह्म वादने अज्ञान माना है। यह शास्त्र पढ़नेका अज्ञान इन भिन्न भिन्न चीजोंको समझानेका जो अज्ञान लगा है इस अज्ञानको नष्ट कर देता है और खुद नष्ट हो जाता है।

स्वपरविकल्पप्रशामनपर एक और दृष्टान्त– जैसे जैन सिद्धान्तका एक दृष्टान्त लो – दो नय होते ह—निश्चयनय और व्यवहारनय। व्यवहारनय तो अन्य वस्तुमें अन्य वस्तुका सम्बन्ध जोड़ना कहलाता है और निश्चयनयमें एक ही वस्तुमें एक ही वस्तुके सहजस्वरूपको देखनेका काम बना रहता है। अब विकल्पकी दृष्टिसे देखिये तो व्यवहारनय भी विकल्प है और निश्चयनय भी विकल्प है। जब ध्यानी पुरुष अपने शुद्ध आत्मतत्त्वमें मग्न होना चाहता है तो भले ही व्यवहारनय पहिले साधक रहे लेकिन उस निर्विकल्प दशासे पहिले समयपर तो निश्चयनय साधक बनता है। वहाँ यदि कोई प्रश्न कर बैठे कि निश्चयनय भी विकल्प है, वह विकल्प अविकल्प दशाका कारण कैसे बन जाता है? तो जैसे वहां यही उत्तर दिया जा सकता है कि उस शुद्ध निश्चयनयके विकल्पमें यह प्रभाव है कि बड़े बड़े व्यवहारनयके विकल्पोंको समाप्त करते हुए खुद भी समाप्त हो जाता है और वहां निर्विकल्प दशा जगती है। इसीतरह हमारा ब्रह्माद्वैतवाद है। उस ब्रह्मस्वरूपमें मग्न होनेके लिए जो शास्त्र अध्ययन आदिक करते हैं, आत्मध्यान आत्ममननका उपाय बनता है, यद्यपि ये उपाय भी सब मिटते हैं, विद्यास्वरूप तो एक अकल्पनीय अनिर्वचनीय स्वरूप है लेकिन यह आत्मध्यान आदिककी अविद्या भी इन बड़ी बड़ी अविद्यावोंसे, भिन्न–भिन्न चीज मानने हठको, अज्ञानको समाप्त करते हुए खुद भी समाप्त हो जाता है। यों शास्त्रकी प्रवृत्ति व्यर्थ नहीं है और फिर भेदको बताने वाली जो यह अविद्या है इसका जब बिनाश हो जाता है तो एकस्वरूप स्वयं अवस्थित हो जाता है।

अभेदब्रह्मकी सिद्धिमें अभेद आकाशका उदाहरण—जैसे ५० घड़े रखे हैं, जब हम भेददृष्टि रखते हैं यह घड़ा है, यह घड़ा है तो हमें वहाँ आकाशका भी भेद नजर आता है, इस घड़ेका आकाश इस घड़ेमें है, इस घड़ेका आकाश इस घड़ेमें है। यदि हम घड़ेके भेदको बताने वाली अविद्याको समाप्त कर दें तब एक शुद्ध आकाश रहता है इसीतरह जब हम इस भेदको दूर कर दें तो एक दृष्टि रहती है। इसप्रकार ब्रह्मवाद अभेदकी सिद्ध कर रहा है। एक शुद्ध ब्रह्म ही तत्त्व है। जैसे आकाश एक है, अखण्ड है, नित्य है, अपरिणामी है, इसी प्रकार ब्रह्म (आत्मा) एक है, अखण्ड है, नित्य है, अपरिणामी है इस परमात्मरूपका ग्राहक ज्ञान ही प्रमाण है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, अतः अपूर्व अर्थोंका निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण है यह कथन युक्त नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समारोपित भेदसे लोकव्यवहारका अद्वैतवादमें कथन —लोकमें पदार्थ हैं तो अनन्तानन्त, किन्तु उनकी जातिका भी भेद न करके और उन सब पदार्थोंके एक सामान्य सत्त्वस्वरूपका हीं आग्रह करके अद्वैतवादी कह रहे हैं कि ये जितने भी पदार्थ दिखते हैं ये वास्तवमें कुछ नहीं हैं, एक अद्वैतब्रह्म ही तत्त्व है। इसपर यह शंका की जा सकती है कि अद्वैत मानने पर फिर सुख दुख बन्ध मोक्ष आदिक कुछ भी भेदकी व्यवस्था न रह सकेगी क्योंकि ये सब भेदमें हैं। इसके उत्तरमें अद्वैतवादी कहते हैं कि कल्पितभेदसे भी सुख दुःख बन्ध मोक्ष आदिकके भेदकी व्यवस्था बन सकती है। जैसे भेदवादी भी यह कहा करते हैं कि मेरे शिरमें पीड़ा है, मेरे पैरमें वेदना है। क्या शिरमें पीड़ा होती है ? अथवा पैरमें वेदना होती है। वेदना तो जीव में होती है। शिर और पैर तो भौतिक चीज हैं फिर भी जीवमें होने वाली वेदनाको उपचारसे अपनी कल्पनाके अनुसार पैर और शिरमें कह देते हैं तो कल्पितभेदसे भी भेद हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्माद्वैतवादमें भी यह बताया गया है कि जितने लोक में ये भेद देखे जा रहे हैं, भिन्न-भिन्न पदार्थ माने जा रहे हैं, ये सब भेदकी कल्पनासे होते हैं, वास्तविक कुछ भी भेद नहीं है।

लोकव्यवहारमें समारोपित भेदका शङ्कापरिहारपूर्वक समर्थन — यदि इसके उत्तरमें जैन आदिक यह कहें कि पैर आदिकमें पीड़ा तो नहीं है पर वेदना का अधिकरण जरूर है अर्थात् पैर शिरमें कुछ रोग हो जानेके निमित्तसे आत्मामें पीड़ाका अनुभव होता है, तो कुछ तो सम्बन्ध है इस कारण उसके भेदमें भेदकी व्यवस्था बन सकती है। इसके उत्तरमें अद्वैतवादी कहते हैं कि यह भी युक्त नहीं है। क्योंकि शिर और पैर तो कुछ तत्त्व ही नहीं हैं, ये क्या वेदनाका कुछ अनुभव कर लेंगे ? यदि शिर पैर अनुभव करलें तो यह नास्तिक मत हो गया कि जीव कुछ नहीं है जो यह शरीर है, ढाँचा है यही है जीव और यही जानता है, यही भोगता है। इस शरीरके अतिरिक्त जीव कुछ नहीं है यही प्रसङ्ग आ जायगा। तो इस तरह ब्रह्माद्वैतवादी कहते जा रहे हैं कि एकत्व ही वास्तवमें सिद्ध है। प्रत्यक्षसे, अनुमानसे और आगमसे ब्रह्मवाद ही तत्त्व सिद्ध होता है, भिन्न-भिन्न पदार्थ कोई तत्त्व नहीं है, ऐसा ब्रह्माद्वैतवादीने इसलिए यह प्रकरण रखा कि प्रमाणका स्वरूप कहा जा रहा था कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय कराये वह ज्ञान प्रमाण है, तो अद्वैतवाद दर्शनका कथन है कि अर्थ तो अपूर्व और भिन्न-भिन्न कुछ होता ही नहीं। केवल एक ब्रह्म ही सत् है और ये सब पदार्थ मिथ्या हैं तब इसका ज्ञान करना कैसे सत्य कहलायेगा ? इस प्रकार अद्वैतवादने अपना पक्ष रखा।

एक ब्रह्मसाधक प्रमाणके विकल्पोंकी मीमांसा—अब अद्वैत तत्त्वके सम्बन्धमें आचार्यदेव कहते हैं कि सारा विश्व एक है, अभेद है ऐसा अभेद जो सिद्ध कर रहे हो, क्या इस वजहसे कर रहे हो कि अभेदको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अथवा इस कारण कह रहे हो कि भेदको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण ही नहीं है भेदमें बाधा डालने वाला कोई प्रमाण है। दोनों बातोंसे भी अभेदकी सिद्धि की नहीं जा सकती है, जिसमें यह तो कहना युक्त है नहीं कि भेदकी सिद्धि प्रमाणसे नहीं है इस कारण एक अभेद ही ब्रह्म है। यह बात तो तुम्हारी इस कारण अयुक्त है क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक भेदके अनुकूल ही पड़ रहे हैं। हम आंखसे या इन्द्रियसे जो कुछ भी जानते हैं प्रत्यक्षसे स्पष्ट यह सब जुदा जुदा मालूम पड़ रहा है और फिर भेद माने बिना तो यह भी व्यवस्था नहीं कर सकते कि कौन प्रमाण होता है कौन अप्रमाण होता है। जैसे अभेद प्रमाण है और भेद अप्रमाण है यह कहा तो कुछ प्रमाण होना कुछ अप्रमाण होना ये दो चीजें हैं क्या? यदि कहो कि ये दो चीजें हैं तो अभेद कहाँ रहा, अद्वैत कहाँ रहा? फिर दो बातें हो गई। यदि कहो कि नहीं दो बात नहीं हैं तो प्रमाणकी अप्रमाण बताये विना सिद्ध नहीं और अप्रमाणका प्रमाण बताये बिना सिद्धि नहीं। तो भेद माने बिना तो हम कोई भी मनुष्य अपना सिद्धान्त रख ही नहीं सकते। आखिर यह तो समझना ही होगा कि मेरीं बात प्रमाणभूत है इसके अतिरिक्त अन्य अप्रमाण है। भेद, अपेक्षा, प्रतिपक्ष धर्म ये तो प्रत्येक तत्त्वके साथ जुड़े हुए हैं। जहाँ मुंहसे "यह है" इतना भी निकला कि उसमें ही यह जुड़ा हुआ है कि यह और कुछ चीज नहीं है। तो है और नहीं, इनका भेद तो प्रत्येक कथनमें जुड़ा ही रहता है। कोई कहे कि मेरी बात सच है इसका क्या यह अर्थ नहीं है कि मेरी बात झूठ नहीं है? तो सत्य असत्य, भेद अभेद, सुख दुःख बंध मोक्ष सब कुछ हैं, द्वैतका निषेध नहीं कर सकते।

सर्वभेदसाधक प्रमाणका अभाव—यदि कहो कि अभेदका साधक प्रमाण मौजूद है इस कारण हम अभेद सिद्ध करते हैं तो पहिली बात तो यह है कि जो सिद्ध करना चाहें और कोई प्रमाण देकर सिद्ध करना चाहें तो जो प्रमाण देंगे वे तो कहलायेंगे साधक और जिस बातको सिद्ध करेंगे वह कहलायगा साध्य। यों साध्य और साधकका भेद तो मानना ही पड़ेगा। साध्य साधक भेद भावके बिना निर्णय ही सम्भव नहीं फिर अभेद साधक प्रमाणके समान लोगे? यदि है अभेद साधक प्रमाण तो अभेद हुआ साध्य और प्रमाण हुआ साधक। तो यों अभेद आ गया। भेद के बिना तो कुछ सिद्ध नहीं किया जा सकता।

अभेदके एक व्यक्तिगतत्व व अनेक व्यक्तिगतत्वका विकल्प—आवान्तरसत्तावादी कह रहे हैं कि जो तुमने यह कहा था कि सर्वप्रथम निर्विकल्प प्रत्यक्षमें एकत्व ही ज्ञात होता है कहा था ना, कि जब नेत्र खुले, तो खुलनेक साथ ही सर्वप्रथम जब कि कुछ व्यक्तिगत सत्ता विदित होती है उससे भी पहिले कुछ प्रकाश सा विदित होता है वह परमार्थ सत् है, ब्रह्म है ऐसा जो कहा है तो हमें बतलावो कि वहां जो एकत्व विदित होता है वह एक व्यक्तिय रहने वाला बिदित होता है या अनेक व्य-

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्तियोंमें रहनेवाला एकत्व ज्ञात होता है या व्यक्तिमात्रमें रहने वाला एकत्व ज्ञात होता है। यहां प्रश्न यह किया गया है कि जो कोई यह मानता है कि जब हम कुछ भी जानते हैं तो उस जाननेमें सर्वप्रथम अभेद एक निर्विकल्प प्रकाश ज्ञात होता है। तो वह एकत्व वह प्रकाश जिसे तुमने एक माना है वह क्या एक व्यक्तिमें नजर आया या अनेक व्यक्तियोंमें या व्यक्तिमात्रमें ?

एकव्यक्तिगत अभेदके प्ररूपणसे सर्वाद्वैतकी असिद्धि - उस एकत्वको यदि एक व्यक्तिगत मानोगे तो यह बतलावो कि वह एकत्व फिर सर्वव्यापक है या उस ही एक व्यक्तिमें व्यापक है ? जो एकत्व नजर आया वह उस ही एक व्यक्तिमें व्यापक है तो विश्वरूप एकत्व कहाँ रहा ? यों वह एक वस्तु विदित हुई सो समग्र वस्तुओंमें एक-एक व्यक्तिगत एकत्व निरखें तब वे सब प्रत्येक पदार्थ न्यारे-न्यारे हुए यदि कहो कि नहीं, एकत्व एक व्यक्तिगत तो दीखा, पर वह सर्वव्यापक दीखा, तो यह तो परस्पर विरुद्ध बात है। सर्वव्यापक हो और फिर एक व्यक्तिमें बँधा हुआ हो यह बात कैसे सम्भव हो सकती है ? तो इससे तुम्हारे अभेद की सिद्धि नहीं हो सकती है।

अनेक व्यक्तिगत अभेदके प्ररूपणसे सर्वाद्वैतकी असिद्धि - यदि यह कहो कि अनेक व्यक्तियोंमें पाया जाने वाला एक अभेद एकत्व एक स्वरूप जाना तो यह बतलावो कि वह एकत्व व्यक्तियोंके आधार रूपमें प्रतिभास होता है, ज्ञानमें आता है या व्यक्तियोंका आधार न करके स्वयं ही केवल एकत्व, ब्रह्म ज्ञात होता है। जिस ब्रह्मकी सिद्धि कर रहे हो वह ब्रह्म अनेक व्यक्तियोंमें पाया जाता है ऐसा मानते हो तो वह ब्रह्म व्यक्तियोंके आधारमें रहता हुआ मालूम होता है या किसी भी व्यक्तिके आधारसे न रहकर स्वतंत्र स्वच्छन्द रहता हुआ मालूम होता है। यदि कहो कि व्यक्तियों आधारमें रहता है वह ब्रह्म, तब तो भेद सिद्ध हो गया, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तियोंमें वह ब्रह्म रहा आया। व्यक्ति अधिकरण हैं एकत्व अथवा ब्रह्म आधेय है, जिसे सर्वव्यापी कह रहे हो, लो यों भी यह भेद हुआ और अनेक व्यक्तियोंसे भी भेद हुआ

भेदकी प्रत्यक्षसिद्धता—किन्हीं भी व्यक्तियोंका आधार न करके ब्रह्म अपने आप सर्वत्र मौजूद है यह मानोगे तब तो बीचमें, अन्तरालमें वह ब्रह्म प्रतीत होना चाहिए। एक व्यक्ति यहां बैठा एक दो गज दूर बैठा तो बीचमें यह अन्तर क्यों आ जाता। जब ब्रह्म सर्वव्यापी है तो वह आत्मा सर्वत्र रहना चाहिए। तो इस प्रकार भेद तो प्रत्यक्षके ही विरुद्ध है। जो सीधी सी बात है उसका निषेध करके एक कल्पित अभेदकी ओर ले जाना यह कहांकी बुद्धिमानी है। और, देखिये जितने भी कार्य होते हैं वे सब व्यक्तियोंसे होते हैं, भेदसे या जातिसे नहीं होते। जैसे कोई कहे कि यह काम जल्दी कराओ। कैसे करायें ? अरे मनुष्य जातिसे करावो। तो मनुष्य जाति उस कार्यको करेगी क्या ? अरे उसे तो मनुष्य करेगा। तो जो काम मनुष्योंसे होगा

http://www.jainkosh.org

उस काममें तुमने मनुष्य जातिकी कल्पना की। व्यक्तिकी कल्पना नहीं होती है कल्पना होती है जातिकी अर्थक्रिया याने कार्यका होना व्यक्तिसे होता है जातिसे नहीं होता। कोई कहे कि जावो मनभर दूध लावो। कहाँसे लायें ? अरे गौ जातिसे दूध लावो। भला बतलावो गौ जातिसे भी दूध निकलता है क्या ? अरे दूध तो गायोंसे निकाला जायगा। तो कोई भी काम हो वह पदार्थसे बनता है, व्यक्तिसे बनता है जातिकी तो सदृशतासे कल्पनाकी जाती है। तो इस प्रकार समस्त पदार्थोंमें जो एक सत् स्वरूपकी कल्पना की जाती है वह सदृशतासे की जाती है।

अर्थक्रियासे पदार्थके अस्तित्वकी प्रसिद्धि भैया ! चूंकि सभी पदार्थ अपना अपना अस्तित्त्व रखते हैं अतएव अस्तित्त्वका स्वरूप लेकर एक ऐसी जाति बन गई कि सत् एकस्वरूप है। केवल अस्तित्त्वमें भेद क्या ? आपके शरीरमें, हाथ पैरमें आपके भीतरके कषाय आदिक भावोंमें फर्क है लेकिन कुछ भी होता है है मात्रमें क्या फर्क है ? तो वह है' मात्र जब सब पदार्थोंमें एक समान है तो इस सदृश्ताको लेकर एक सत् स्वरूप माना जा सकता है। प्रत्येक पदार्थकी व्यवस्था जातिमें भी नहीं होती किन्तु परिणमनसे होती है। अर्थ क्रिया अर्थसे होती है। प्रत्येक पदार्थ अपना स्वरूप लिये हुए है, अपने ही प्रदेशमें रहता है, उसका गुण शाश्वत है। वह भी उस पदार्थमें है, उसकी पर्यायें परिणत होती हैं वे भी उस पदार्थके प्रदेशमें हैं पदार्थसे बाहर पदाथ का कोई काम नहीं है। परिणमनका ही नाम अर्थक्रिया है। जो परिणमन जितनेमें होना ही पड़े, जितनेसे बाहर कभी न हो बस उसका नाम एक पदार्थ है। पदार्थकी मर्यादाका कारण भी परिणमन है। जैसे मेरे क्रोधादिक परिणमन मेरे ही प्रदेशमें हो सकते हैं और मेरेसे बाहर एक प्रदेथमात्र भी अन्यत्र नहीं हो सकते, इस कारण यह मैं एक हूं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थोंमें भी यही बात है। इससे तो पदार्थ ज्ञात होते हैं, पर जातिसे पदार्थकी व्यवस्था नहीं है। जाति कल्पित है, व्यक्ति कल्पित नहीं है।

सिद्धान्तका मौलिक प्रयोजन यद्यपि ब्रह्माद्वैतवादका प्रयोजन भी यही है कि किसी प्रकार रागद्वेष मोह छूटे, रागद्वेष मोहकी वेदना ही वास्तिवक विपदा है। जीवोंपर और कुछ विपदा नहीं है। ये बाह्य पदार्थ हैं, आज कोई अपने पास है, कल रहे या न रहे, यह जीवपर कोई विपदाकी बात नहीं है। परपदार्थमें जो मोहभाव बना, अज्ञान बना, रागद्वेष बना यह ही एक विपदा है। इस विपदासे वचना सभी दार्शनिकोंने इष्ट माना है। किन्हींने ईश्वरकी कृपापर अपनी विपदाका छूटना माना है तो ईश्वर भक्तिमें ही इस शैलीसे तन्मय होते हैं कि हे प्रभो ! तू ही मेरा पिता है रक्षक है। मेरी खबर ले, इस प्रकार भक्तिमें लीन होते हैं। यहाँ इस ब्रह्माद्वैत सिद्धान्तमें मोह रागद्वेष दूर करनेका यह उपाय सोचा गया है कि यह मानें कि दुनियामें ये सब पदार्थ कुछ हैं ही नहीं, मायारूप हैं, इन्द्र-जाल हैं, जब ये कोई वास्तविक चीज नहीं है तो फिर इनसे रागद्वेष मोह क्यों किया जायगा ? और, ऐसे इन पदार्थोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपना चित्त हटानेके लिये कुछ तो आधार चाहिए जिसमें अपना चित्त लगायें। तो जिसमें उपयोग देनेपर इन बाह्य पदार्थोंसे हमारा उपयोग हट जाय, ऐसा कोई बताना अवश्य पड़ेगा। यह उपयोग हटने-हटनेका ही काम नहीं करता बल्कि एक दृष्टिमें यों देखिये कि उपयोगका काम हटना नहीं है किन्तु लगना ही है। जिस ओर यह उपयोग लगा उसका ही नाम है दूसरी जगहसे हटना कहलाया। उपयोगका हटना काम नहीं है, लगना काम है। तो इन भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे उपयोग हटाये इसके लिए एक अद्वैत सत्स्वरूप अनिर्वचनीय ब्रह्म है, ऐसे अद्भुत, अजानी, अविकल्प पदार्थोंकी ओर उपयोगको ले गए तो वहाँ उपयोग ले जाकर फिर ये भेदवादके उपयोग न टिक सकेंगे यद्यपि उद्देश्य तो अद्वैतवादका भी उत्तम है' कौन जीव सुख नहीं चाहता ? प्रत्येक जीव सुख चाहता हैं और जो जितने प्रयत्न करता है वह अपने सुखके लिए करता है, किन्तु बात यह देखना होगा कि जो प्रयत्न किये जा रहे हैं वे सही हैं अथवा नहीं है।

बाह्यके उपयोगमें निर्विकल्प स्थितिकी असंभवता—अब इस प्रसङ्गमें निरखिये—जो सत् नहीं है उसका कुछ भी परिणमन नहीं होता, न मायारूप न परमार्थरूप। मैं हूँ ऐसा अपने आपमें अपना निर्णय है, यह मैं निर्विकल्प होना चाहूँ तो कुछ अपने आपमें ही ऐसा परमार्थतत्त्व खोजना होगा कि जिसमें लगनेपर फिर विकल्प सब समाप्त हो जायें। यों अपने आपमें चैतन्य ब्रह्म परम ब्रह्मस्वरूपको निरखा जाय तो खुद ज्ञान हो और खुदके सहजस्वरूपमें मग्न होना चाहें तो यह बात तो चिग सकनेकी बन जायगी लेकिन हम सारे विश्वका ठेका लें, इन सब पदार्थोंका मूल कोई एक ब्रह्म है ऐसा निरखकर हम सारे लोकमें एक ब्रह्म है ऐसा निरखें तो स्वसे दूर ही रहे। चाहे किसी रूपमें तत्त्वको रखें। जब हमारा चित्त हमारा उपयोग हममें न रह सका, बाहर रहा तो ऐसे उपायसे निर्विकल्प स्थितिकी आशा करना असम्भव है। निर्विकल्प स्थिति नहीं बन सकती है।

यहाँ आत्माद्वैतवादी यह कह रहे हैं कि लोकमें सब कुछ एक ब्रह्म ही है। जो कुछ ये भेद नजर आ रहे हैं ये सब कल्पित हैं, मायारूप हैं। तब उनसे पूछा जा रहा है कि यह जो एकत्व है, जो एकाकारता है वह एक व्यक्तिके जाननेके माध्यमसे जाना जा रहा है या समस्त व्यक्तियोंका हम ग्रहण करके जान रहे हैं कि यह ब्रह्म, यह एकत्व समस्त पदार्थोंमें मौजूद है। यदि कहोगे कि हम एक व्यक्तिको ग्रहण करके ही इस लोकव्यापी एकत्वको जान जायेंगे तो यह विरोधकी बात है कि हम एक व्यक्तिको ग्रहण करें और सर्वव्यापक एकत्वको जान जायें। एकाकारता तो उसका नाम है कि अनेक व्यक्तियोंमें कुछ एकरूप हो उसे ही कह सकेंगे सर्वव्यापक एक। पर तुम तो एक व्यक्तिको ग्रहण कर रहे तो अनेक व्यक्तियोंमें अनुयायीरूपसे रह सकने वाला कोई एकत्व एक व्यक्तिको ग्रहण करनेसे कैसे जान सकेगा। जैसे एक गौको देखनेसे उसकी एक जातिका ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि गौ जातिका अर्थ क्या है कि समस्त गायोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहने वाला जो एक सादृश्य है उसका नाम है गौ जाति। तो एक व्यक्तिका ग्रहण करनेपर हम सर्वव्यापी एकत्वको नहीं जान सकते हैं। यदि कहो कि हम समस्त व्यक्तियोंका ग्रहण करके एकत्वको जान रहे हैं तो यह बात तो सब झूठ है। समस्त व्यक्तियोंको जान कौन रहा है? यदि कोई जान जाए तो वह सर्वज्ञ हो गया। तो सकल व्यक्तियोंके जाननेके द्वारसे भी यदि एकत्वकी प्रतीति मानोगे तो सभी लोगोंको उसका ग्रहण सम्भव हो जायगा, अथवा किसी एकको भी न विदित हो और यों भेद आ जायगा।

सर्वव्यक्तिगत अभेदकी सिद्धिमें भेदवादकी स्पष्ट झलक – देखिये समस्त व्यक्तियोंमें रहने वाला एकत्व आ गया ना कि व्यक्ति हैं सब और उनकी सदृशता को लेकर एक बात रखी। भेद तो अपने आप ही सिद्ध हो गया। सीधी बात तो यह है कि अनन्त जीव है। सबका अपना-अपना सुख दुःख, सबकी जान, सबकी करनी अपनी-अपनी न्यारी है और अपनी-अपनी करनीसे कमाये हुए पुण्य पापके द्वारा इस लोकमें सुख दुःख भोगते हैं, नाना शरीर धारण करते हैं। समस्त जीवोंमें, सबमें पाया जाने वाला एक स्वरूप है चैतन्य। तो पदार्थ जातिकी अपेक्षा सब जीव एक माने गए हैं पर ऐसा नहीं है कि वे सब एक अनुभवमें भी हों। यदि सब कुछ एक मान लिया जाय तो एक जीवको सुख हो तो सभी जीवोंको एक साथ सुख होना चाहिए। किसी एक जीवको दुःख हो तो सब जीवोंको एक साथ दुःख होना चाहिए, किन्तु ऐसा तो है नहीं। कोई जीव सुखी है कोई दुःखी है। जब यह अनुभवभेद है, वे परिणमनभेद हैं तो उन सब पदार्थोंमें भी भेद है, वे सब जीव न्यारे-न्यारे हैं।

एकत्वदर्शनमें आत्मलाभका प्रयोजन – भैया! स्वभावदृष्टिसे, जातिसे तो सब जीव समान हैं और समाधिके प्रयोगमें इनका बड़ा आदर किया जाता है। हम सब जीवोंमें एक चैतन्यस्वरूपको निरखें। यह आदर भी इसलिए नहीं किया गया कि तुम सब जीवोंमें चैतन्यस्वरूपको निरखते रहो और अपने आपमें कुछ भी प्रकाश न लावो। सब जीवोंमें चैतन्यस्वरूपको निरखनेसे, केवल चैतन्यस्वरूप ज्ञानमें रहनेसे उन सब जीवोंका आधार छूट जाता है। और जब सब जीवोंका आधार छूट गया, ज्ञानमें केवल चैतन्यस्वरूप ही प्रतिभासमें आया तो स्वयं तो स्वयं है ही। यह आधार तो कभी छूट ही नहीं सकता। सो निज आधारमें चैतन्यस्वरूपका अनुभव होने लगता है। तो सब जीवोंमें चैतन्यस्वरूप एक जाति है।

पुद्गलोंका अनन्त व्यक्तित्व – जीवोंकी भांति जितने भी पुद्गल हैं वे सब भी स्वतंत्र अनन्त हैं। समस्त पुद्गल रूप रस, गन्ध, स्पर्श वाले हैं, वे अपना-अपना पृथक्-पृथक् परिणमन करते हैं। ये देखनेमें जितने स्कंध आ रहे हैं ये विशुद्ध पुद्गल नहीं हैं। पुद्गल तो केवल एक अणु-अणु मात्र है। अनेक अणुवोंका स्कंध हो जाना, मिल जाना यही है स्कंध। तो इन स्कंधोंमें जो एक-एक अणु हैं उनपर दृष्टि दें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देख लो, प्रत्येक अणुका परिणमन उस ही का खुदमें है। किसी भी अणुका परिणमन किसी दूसरे अणुमें अथवा जीवादिकमें नहीं पहुँचता है। यों अनन्त अणु हैं किन्तु समस्त अणुवोंमें मूर्तिमत्ताका होना एक समान है। प्रत्येक अणु रूप, रस, गन्ध, स्पर्श युक्त है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति सभीमें ये चार तत्त्व पाये जाते हैं —स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण। प्रत्येक पदार्थ जो मूर्तिमान हैं इस मूर्तिकलाकी दृष्टिसे एक स्वरूप वाले हैं।

पदार्थोंकी स्वरूपसिद्धता व प्रमाणस्वरूपकी निर्दोषता—इस विश्वमें जो ६ जातिके पदार्थ पाये जाते हैं —जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन समस्त पदार्थोंको एक सत्व सामान्यकी दृष्टिसे निरखा जाय तो प्रत्येक पदार्थ सत् है। यों जातिकी अपेक्षा महासत्ता सिद्ध होती है, लेकिन महासत्तासे परिणति नहीं हुआ करती। परिणति होती है प्रत्येक पदार्थकी अपने आपमें स्वतंत्र–स्वतंत्र। इससे यह सिद्ध है कि पदार्थ अनन्तानन्त हैं। एक ही आत्मा हो और कुछ भी न हो यह बात सिद्ध नहीं होती। इसी कारण प्रमाणका स्वरूप यह बिल्कुल सही कहा गया कि जो अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है।

विविध भेदसिद्धि—यहाँ एक विकल्प यह रखा जा रहा है कि जो यह कह रहे हो कि सारा विश्व एक ब्रह्म है तो यह ब्रह्म अथवा एकत्व क्या अनेक व्यक्तियोंमें रहने वाला है? यदि वह एकत्व अनेक व्यक्तियोंमें रहने वाला है तो प्रथम तो अनेक व्यक्ति ही मान लिये गये, और फिर दूसरी तरह भेद नहीं माननेकी हठ ही करोगे तो यह तो मानना ही पड़ेगा कि अनेक व्यक्ति हैं आधार और एकत्व है आधेय। इस प्रकार आधार और आधेयका भेद हो गया और दूसरा भेद यह हो जायगा कि अनेक व्यक्ति तो बन गए विशेषण और एकत्व बन गया विशेष्य, अथवा उन अनेक व्यक्तियोंके विशेषणरूपसे यह एकत्व प्रतिभासमान हुआ। यों विशेषण और विशेष्यका भेद बन गया।

सर्वभेदकी अपरमार्थता—अब यह बतलावो कि अनेक व्यक्तियोमें रहने वाला एक ब्रह्म अनेक व्यक्तियोंसे भिन्न है या अभिन्न है याने अनेक व्यक्तिमें एकमेक है या उनसे ब्रह्म जुदा पदार्थ है? यदि कहोगे कि उन अनेक व्यक्तियोंमें एकमेक है तो इसका मतलब भेद हो ही गया। एकत्व और अनेक व्यक्ति सब अभिन्न हैं सो अनेक व्यक्ति हैं तो ब्रह्म भी अनेक हो गए क्योंकि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके साथ अन्वय नहीं रखता। जैसे एक जीव अपने भूत भविष्य वर्तमानकी सब पर्यायोंमें अन्वय रखता है अर्थात् उन प्रति परिणतियोंमें रहता है इसीप्रकार व्यक्ति प्रतिव्यक्तियोंमें नहीं रहता है। तो फिर एक ब्रह्म भी अनेक व्यक्तियोंमें कैसे रह जायगा। कोई एक वस्तु यदि सद्भूत है तो अन्यमें नहीं रह सकता है। यदि कहोगे कि यह ब्रह्म उन अनेक परिणतियोंसे जुदा है तो फिर नानात्वकी सिद्धि हो गई। वे अनेक व्यक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अच्छी तरह सत् हैं और ब्रह्म भी सत् है तो अनेक पदार्थ हो गए। इस कारण यह मानना युक्त नहीं है कि सारा विश्व एक ब्रह्म स्वरूप है।

एक जातिमें अनन्त पदार्थ -भैया ! पदार्थ तो ये सब अनन्तानन्त हैं, भले ही जीव जीवमें, जीव जातिकी अपेक्षा एक आत्मस्वरूप कह लो तो पुद्गल पुद्गलमें, इन भौतिक पदार्थोंमें एक जातिकी अपेक्षा एक मूर्तिपना कह लेना चाहिए। यों जाति की अपेक्षा होते हैं विश्वके छः भेद और व्यक्तियोंकी अपेक्षा ये सब हैं अनन्तानन्त पदार्थ। और, विश्व ही नाम किसका है ? विश्व नाम है सबका। विश्व, सर्व, सकल, अखिल आदि शब्द सब एक ही पर्यायवाची शब्द हैं। सबका जो समूह है उसका ही नाम विश्व रखा गया है। तो यह ही विश्व शब्द सिद्ध कर रहा है कि पदार्थ अनेकानेक हैं और उनका यह समूह है। यों सब पदार्थ भिन्न-भिन्न अपने नामके स्वरूपमें रहने वाले सिद्ध होते हैं और इस मार्गसे ज्ञान बनायें तो भेदविज्ञान बनता है।

सर्वकी सर्वविविक्तता —प्रत्येक पदार्थ जुदे-जुदे हैं, एक अणुका किसी दूसरे अणुके साथ भी तादात्म्य नहीं है, चाहे वे एक ही स्कन्धमें बद्ध पड़े हैं। जैसे चौकी यदि सरकाई तो सारे अणु सरक गये। फिर भी प्रत्येक अणुका परिणमन परके स्व-रूपमें है भले ही स्कन्ध पदार्थमें कुछ विलक्षण परिणमन होता है लेकिन इसमें वस्तु की स्वरूपसत्ताका विघात नहीं है। प्रत्येक अणु प्रत्येक अन्य पदार्थोंसे जुदा है। प्रत्येक जीव अन्य प्रत्येक जीवसे और समस्त पदार्थोंसे जुदा है। इस प्रकार सबसे विविक्त जब केवल अपने आपको निरखा जाता है, केवल इस आत्मतत्त्वका ज्ञान किया जाता है और इसी कारण आत्मदृष्टिमें विलक्षण आनन्द उत्पन्न होता है। अतएव इसमें रुचि जगती है। रुचि जगने भरकी देर है फिर यह आत्मा चूंकि धुन वाला है तो फिर रुचि के द्वारा अपना कार्य बना लेता है। यों पदार्थोंके नाना माननेहर भेदविज्ञान बनता है और उस भेदविज्ञानके प्रतापसे ग्रहण किया गया, ज्ञानमें लिया गया जो आत्मस्वरूप है, यह जीव उस आत्मस्वरूपमें मग्न हो जाता है, तो एक इस आत्ममग्नताके लिए पदार्थके नानात्वका विरोध करना और एक ब्रह्ममात्र आत्ममात्रका सिद्धान्त बनाना युक्त नहीं बैठता।

अनुगत और व्यावृत्त प्रत्यय होनेके कारण अभेद व भेद दोनोंकी सिद्धि—और भी सुनिये। सारे विश्वमें एक ब्रह्म माननेकी, एकत्वकी कल्पना करनेकी बात इसी कारण तो उठी कि समस्त पदार्थोंमें अनुगत प्रत्यय होता है कि यह है, यह भी है, तो समस्त पदार्थोंमें जो एक साधारण धर्मका ज्ञान हुआ उस प्रत्ययका जनक होने से यदि इन समस्त व्यक्तियोंमें एकत्वकी कल्पना करते हो तो जैसे अनुगत प्रत्यय होता है सबमें जो मौजूद है ऐसा एक निर्णय होकर तो व्यावृत्तिका प्रत्यय भी होता है। यह आत्मा अलग है, स्वतंत्र है, जुदा है इस प्रकार व्यावृत्त प्रत्यय भी होता है। यह है सो वह नहीं है, चोकी है सो दरी नहीं है ऐसा व्यावृत्त प्रत्यय भी होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो व्यावृत्त प्रत्ययका जनक होनेसे नानात्व क्यों नहीं मान लिया जाता। यदि सर्व पदार्थोंमें एक साधारण धर्म देखकर एकत्वकी कल्पना करते हो तो समस्त पदार्थोंमें एक प्रतिविशिष्ट धर्म निरखकर नानात्वको क्यों नहीं मानते हो ? और, फिर भैया ! देखो एकत्व तो नानात्वकी सिद्धि किए बिना नहीं बनता। जैसे कि नानात्व किसी हद तक एकत्वको माने बिना नहीं बनता। यह तो बहुत कुछ सम्भव है कि एकत्वको गौण करके नानात्वको हम जाना करें पर नानात्वका निषेध करके एकत्व नहीं ज्ञानमें आ सकता इस कारण यह संगत ही है कि समस्त वस्तु भिन्न-भिन्न अपना-अपना स्व-रूप लिए हुए हैं।

स्वैकत्वदर्शनका लाभ प्रत्येक जीव अपने ही परिणामसे अपना बन्धन बनाता है और अपने ही परिणामसे अपनी मुक्ति बनाता है। हां मुक्तिका मार्ग यह जरूर है कि अपने आपमें अपना सहज स्वरूप दिख जाय। किसी परकी इसमें अपेक्षा नहीं करना है, वह अनादिसे अपनेमें है, स्वभावभूत है, अपना परमार्थप्राणभूत है ऐसा चैतन्यस्वरूप दिखे तो उस अविशिष्ट चैतन्यस्वरूप निरखनेसे एक निर्विकल्प दशा होती है। बजाय इसके कि तिर्यक्रूपसे देखकर हम अविशिष्टपना देखें अर्थात् इन सब व्यक्तियोंपर नजर दे देकर फिर हम इसमें कोई मर्म देखें बजाय इसके अपने आपकी समस्त परिणतियोंमें हम कोई एकपना देखें तो यह हमारे लिए लाभकर होगा। तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वतासामान्य ये दो तरहके सामान्य होते हैं। ये कल्याणके लिए भी बहुत अधिक जानने योग्य तत्त्व हैं, ध्यानसे सुनियेगा।

तिर्यक्सामान्य व ऊर्ध्वतासामान्यका विवरण—जैसे सब मनुष्य बैठे हैं, सभी वर्गके बैठे हैं तो इन प्रत्येक मनुष्योंमें मनुष्यपना पाया जा रहा है यों एक मनुष्यत्व हुआ। मनुष्य हैं हजारों लाखों और उनमें मनुष्यत्व एक अविशिष्ट है अर्थात सामान्यरूप है। एक तो यों एक मनुष्यत्व निरखना यह तो हैं तिर्यक्सामान्यका उदाहरण और एक यों कि हम ही एक मनुष्य हैं, अन्य मनुष्योंपर दृष्टि न देकर हम अपने आपमें यह देखें कि यह मैं बालक था, फिर किशोर हुआ, फिर जवान हुआ, अब बूढ़ा हुआ, इस तरह सर्वत्रमें मनुष्य ही मनुष्य रहा। जन्मसे लेकर अन्तिम अवस्था तक प्रत्येक दिन प्रत्येक समयमें और उन-उन समयोंमें जब-जब मैं जो-जो मनुष्य रहा उस-उसके अनुरूप जुदी-जुदी परिणतियाँ हुई। जब मैं बालक था तो किसीकी परवाह न रखता था, एक बालककी जो स्थितियाँ होती हैं उनमें रहता था। जवान होने पर अन्यरूप परिणतियाँ बनी। वृद्ध होनेपर अन्य परिणतियाँ बनी। तो यहाँ सर्वत्र मैं प्रतिदिन, प्रतिक्षण मनुष्य रहा, उन सब मनुष्योंमें मनुष्यत्व तो एक है। यह हैं ऊर्ध्वता सामान्यका दृष्टान्त। और, अनेक मनुष्योंमें एक मनुष्यत्व देखना यह है तिर्यक् सामान्यका दृष्टान्त।

अद्वैतवाद व सम्यक् समाधिमार्गमें अन्तर – अद्वैतवादमें और स्याद्वादके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस समाधि मार्गमें यह अन्तर है जब कि अद्वैतवाद भिन्न–भिन्न जगह पड़े हुए अनेक पदार्थोंमें एकत्व खोजता है और उस एकत्वका आदर करता है। इतना अधिक आदर करता है कि फिर यह कल्पना कर लेता है कि पदार्थ सद्भूत ही नहीं है। इसकी सत्ता का भी लोप कर देता है जबकि स्याद्वादका यह समाधिमार्ग एक ही जीवकी अनेक परिणतियोंमें अन्वयरूपसे रहने वाला जो एक जीव वस्तु है, चैतन्यस्वरूप है, उसका सादर करता है और इतना अधिक आदर करता है कि उस चैतन्यस्वरूपमें ऐसा मग्न बन जाता कि यह मैं हूँ, इस प्रकारका भी विकल्प समाप्त हो जाता है। यह है अद्वैत-वाद और स्याद्वादके समाधिमार्गका अन्तर। अब फिरसे अद्वैत और द्वैतकी बात सुनिये

एकत्वका नानात्वसे अविनाभाव होनेसे भी भेदकी सिद्धि - अद्वैत सिद्धान्तमें यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि विश्वमें जितने भी जो कुछ पदार्थ हैं उन सब पदार्थोंमें केवल एक एकत्व, एक आत्मत्व ही परमार्थ सत् है और ये सब जो दृश्यमान नाना पदार्थ हैं वे असत् हैं, इसपर आचार्यदेव एक अनुमान बना कर यह सिद्ध कर रहे हैं कि एकत्व नियमसे नानात्वका अविनाभावी होता है। जिस एकत्वको आप सिद्ध करना चाहते हैं वह विवादास्पद एकत्व परमार्थभूत नानापनका अविना-भावी ही होता है क्योंकि एकान्तसे एकत्वकी उपलब्धि नहीं होती है। जैसे घट सकोरा मटका आदि मिट्टीके बर्तन हैं, उन घट आदिकके भेदसे अविनाभूत मिट्टी द्रव्य है तो उन सब घड़ोंमें जो इस मिट्टीके रूपसे एकत्व निरखता है सब ही मिट्टी है तो वह एकत्व घट आदिक उन अनेक बर्तनोंमें अविनाभूत है। नानापनोंसे सम्बद्ध है। क्या उन घट आदिक बर्तनोंको छोड़कर मिट्टी अलग वस्तु है? इसीप्रकार इन सब दृश्यमान अनेक पदार्थोंको छोड़कर उन पदार्थोंका सत्त्व क्या कहीं अलग रखा हुआ है? यह एकत्व नानात्वका ही अविनाभावी है इस कारण न तो एक व्यक्तिगत होकर यह एकत्व प्रतीत होता है और न अनेक व्यक्तिगत होकर यह एकत्व प्रतीत होता है अर्थात् यह ब्रह्म न तो एक व्यक्तिमें नजर आता और न नाना व्यक्तियोंमें सिद्ध होता है। शायद यह कहो कि हम न एक व्यक्तिकी बात करते हैं न अनेककी, किन्तु व्यक्ति मात्रमें वह एक ब्रह्मस्वरूप है तो व्यक्तिमात्र एक अनेक व्यक्तिको छोड़कर और कुछ चीज ही नहीं है।

स्वरूपके अवधारणमें अन्यकी अपेक्षाका अभाव – प्रत्येक जीवजुदा जुदा है। प्रत्येक आत्मावोंका परिणमन कर्तृत्व भोक्तृत्व अनुभवन सब कुछ उनका अपना अपना है। केवल एक सब आत्मावोंमें जो एक समान स्वरूप पाया जाता है उस एक समान स्वरूपको निरखकर सब जीवोंको केवल एक ही कह देना यह तो युक्ति सङ्गत नहीं है। और, जो अद्वैतवादियोंने कहा था कि ये पदार्थ जो न्यारे–न्यारे नजर आ रहे हैं ये तो कल्पनासे नजर आते हैं, प्रत्यक्षसे तो जब देखा तुरन्त एक अस्तित्त्व समझमें आया बादमें फिर कल्पना बनीं, यह चौकी है, यह पुस्तक है, यह दरी है, यों कल्प-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नाओंके विषयभूत होकर यह भेद बना है जो कि अन्यकी अपेक्षा रखता है। तो भेद अन्यकी अपेक्षा रखनेके कारण कल्पनाके विषय हैं, वास्तविक नहीं हैं ऐसा जो कहा वह भी केवल कथन मात्र है। क्योंकि तुम तो कहते हो कि अन्यकी अपेक्षासे एकत्व की कल्पना हुई। ब्रह्मवादी यह कहते हैं कि ये जो पदार्थ भिन्न-भिन्न नजर आते हैं ये अन्यकी अपेक्षा रखकर नजर आ रहे हैं लेकिन बात यह है कि इन सब पदार्थोंमें जो एकत्वको सोचा जा रहा है उस एकत्वकी अपेक्षा रखकर सोचा जा रहा है।

जातिरूप एकत्वमें ही अन्यापेक्षता जैसे गाय-गाय सब भिन्न-भिन्न हैं पीली हो, नीली हो, मुण्डी हो काली हो, बिना पूछकी हो, लम्बी पूछकी हो समस्त गायें ये सब भिन्न-भिन्न हैं। अब उन समस्त गायोंमें हम एक गौ जातिकी कल्पना करें तो उन समस्त गायोंकी अपेक्षा रखकर की जाती है। जो समस्त गायोंमें रहे ऐसा जो स्वरूप है उसका नाम है गौ जाति। तो गौ जातिने अन्यकी अपेक्षा रखी, उन खड़ी हुई समस्त गायोंने अन्यकी अपेक्षा नहीं रखी। वे तो अपने आप खड़ी हैं। अब उन सबमें जो एक गौत्वकी कल्पना करे तो वह एकत्व अन्यकी अपेक्षासे कल्पित हुआ। जैसे सेनामें अनेक डिवीजन होते हैं, मान लो १० सिपाहियोंका एक छोटा मण्डल। ऐसे-ऐसे १० मण्डलोंका एक महामण्डल, ऐसे-ऐसे १०० महामण्डलोंका एक डिवीजन। कैसी ही व्यवस्था बनाये तो ये जो डिवीजन बने हैं ये कल्पनासे बने हैं या एक एक जो सिपाही है वे कल्पनासे बने हैं? एक-एक सिपाहीका अस्तित्व कल्पनामें नहीं बनता, किन्तु उन सिपाहियोंमें जो एक मण्डल सोचा गया बस कल्पनासे बना।

जातिकृत एकत्वमें अन्यापेक्षताके समर्थनपूर्वक व्यक्तिस्वातन्त्र्यकी सिद्धि जैसे चार पैसेका एक आना होता है, १६ आनेका एक रुपया होता हैं, १०० रुपयेका एक सैकड़ा होता है तो रुपया आना ये कल्पनाके विषय है या एक-एक पैसा कल्पनाका विषय है? एक-एक पैसा तो सही मायनेमें साफ-साफ है। अब उनमें यह कल्पना की कि चार पैसेका एक आना होता है तो यह कल्पनाका विषय हो गया तो जो मूलमें एक एकत्व होता है, जो कुछ भी एक अविभाज्य पदार्थ होता है वह तो कल्पित नहीं है किन्तु उनके समूहमें कुछ जाति समझना यह कल्पित है। तभी तो आज कल आना मिट गए क्योंकि यह कल्पनाकी चीज थी, पर पैसा नहीं मिटा। भले ही पैसेका छोटा पैसा बना दिया और चाहे उस पैसेका नाम बदलकर और कुछ नाम रखलें, किन्तु मूलभूत जो एक है कुछ भी वह कल्पित नहीं है, उसे मानकर ही आगे चलना होगा। इस तरह एकत्व तो अन्यकी अपेक्षा रखनेसे कल्पनाका विषय है, पर यह प्रतिव्यक्ति नानापन यह कल्पनाका विषय नहीं है क्योंकि एकत्व अनेक व्यक्तियोंके अधिकरणसे होता है और भेद प्रतिव्यक्तियोंके स्वरूप हैं, वे प्रत्यक्षसे ज्ञात होते हैं। देखते ही सब चटाई, दरी इत्यादि जुदे-जुदे प्रतिभास होते हैं।

स्वरूपके अवधारणमें अन्यापेक्षाका अभाव यदि अन्यकी अपेक्षासे कल्पित ज्ञान बनाकर अनुयायी रूपसे व्यवहार करते हो अर्थात् जो सबमें रहे वह एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सद्ब्रह्म है इसप्रकार अनुयायीरूपसे कल्पना करते हो तो भेद भी प्रत्यक्षसे सीधा जाना जाकर फिर अन्यकी अपेक्षा रखकर विकल्पज्ञानसे व्यावृत्तिरूपमें परिज्ञात करें। जैसे कि जो एक सबमें रहता है वह एक ब्रह्मस्वरूप है ऐसी कल्पना करके तुम एकत्व मानते हो और अनुगतप्रत्यय याने सबमें रहने वाला है ऐसा ज्ञान करते हो ऐसे ही यह इससे पृथक् है यह इससे पृथक् है यों निरखकर व्यावृत्त प्रत्यय मान लो, प्रथम तो बिना ही कल्पनाके ये सब पदार्थ प्रतिव्यक्ति एक–एक जुदा जुदा जाने गये। अब हटने की कल्पना हम बना लें। यह आत्मा इससे हटा हुआ है यह आत्मा इससे न्यारा है ऐसे हटावकी जुदाई देखनेमें अन्यकी अपेक्षा होती है पर अस्तित्वमें अन्यकी अपेक्षा नहीं है जैसे ये सौ मनुष्य बैठे हैं, प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं है। ये ९९ हैं तब यह एक है ऐसा नहीं है। ९९ चले जायें तो क्या एक आदमी का भी आधा हो जायगा ? तो जैसे वे प्रत्येक मनुष्य अपना–अपना अस्तित्व रखते हैं, उनमें कल्पनाकी बात नहीं है, पर जब यों देखने लगें कि हमसे ये न्यारे हैं, यह चीज यों जुदा है यह यों जुदा है यों तो अन्यकी अपेक्षा व्यवहार किया है, पर पदार्थ का अस्तित्व अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता है। तो इस कारण यह कहना अयुक्त है कि अन्यकी अपेक्षासे कल्पनासे हमने नानापन देखा।

भेदकी कल्पनाके स्वरूपमें छः विकल्प अब यह भी बतावो कि कल्पना का अर्थ क्या है ? जिस कल्पनामें तुम पदार्थका भेद बताते हो ये पदार्थ जुदे–जुदे हैं ऐसा कल्पनासे ही ज्ञात होता है तो उस कल्पनाका स्वरूप क्या है ? क्या कल्पना इस का नाम है कि स्मरणके बादमें ज्ञान हुआ ? क्या कल्पना इसका नाम है कि शब्दोंके आकारमें ज्ञान अनुबद्ध है ? जैसे जब हम कल्पनाएँ उठाते हैं तो भीतरमें शब्द और वाक्योंके अर्थ बनते हैं। क्या कल्पना इसका नाम है कि वह शब्दोंके द्वारा रचित है ? अथवा क्या जाति आदिकका उल्लेख कर देनेका काम कल्पना है ? अथवा जो सत् पदार्थ हैं, हैं ही नहीं उनका विषय करना क्या उसका नाम कल्पना है ? जैसे कि माता अपने बच्चेको डरानेके लिए हौवा–हौवा कहा करती है तो उस हौवाको क्या किसीने देखा है ? उसके कितने हाथ पैर होते हैं कैसा मुख होता है ? अरे हौवा कोई चीज ही नहीं है, वह तो एक कल्पनाकी बात है तो चीज कुछ भी नहीं है और उसका विषय करके जाने इसका नाम कल्पना है क्या ? अथवा अन्य पदार्थकी अपेक्षासे पदार्थके स्वरूपका निश्चय करना इसका नाम कल्पना है क्या जैसे बहुत ही मोटेरूपमें शीघ्रतासे लोग यों कहते हैं कि जो चले फिरे खाये पिये उसका नाम जीव है तो क्या जीवका यही स्वरूप है ? है तो नहीं, लेकिन एक शरीरकी अपेक्षा रखकर जीवके स्वरूपका निश्चय कराया गया है। जो चलता फिरता है, जो खाता पीता है वह जीव है। तो अन्यकी अपेक्षा रखकर अन्यके स्वरूपका निश्चय करना क्या इसका नाम कल्पना है ? अथवा केवल उपचार मात्रका नाम कल्पना है ? यों कल्पनाका स्वरूप ६ विकल्पोंसे पूछा गया है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानका स्मरणके अनन्तर होनेरूप कल्पनाकी मीमांसा—उनमेंसे प्रथम विकल्प है कि स्मरणके बाद ज्ञानके होनेका नाम कल्पना है यह तो युक्त नहीं है क्योंकि स्मरणके बाद अभेदज्ञान भी हुआ करता है। जैसे स्मरणके बाद ये नाना पदार्थ ज्ञात हुआ करते हैं इसी प्रकार स्मरणके बाद अभेद भी ज्ञात होता है। बल्कि नाना नाना पदार्थोंके ज्ञान करनेमें स्मरणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसा सामने है तैसा जान लिया, लो इन समस्त गायोंका गोत्व जाति एक है इसप्रकारके एकत्वका ज्ञान करनेके लिए स्मरणकी जरूरत पड़ती है। तो स्मरणके अनन्तर ज्ञानके होनेका नाम कल्पना नहीं कह सकते। अन्यथा तुम्हारा यह अभेद भी कल्पनाका विषय बन जायगा।

शब्दाकारानुविद्धतारूप कल्पनाकी मीमांसा—यह भी नहीं कह सकते कि जो ज्ञान शब्दकी रचनाओंसे रचा गया हो उसका नाम कल्पना है क्योंकि ज्ञान जुदी चीज है। ज्ञान शब्दों द्वारा रचा गया नहीं है। जब कभी भी किसी पदार्थका ज्ञान करना हो तो शब्द रचना भी नहीं करते और सामान्यरूपसे ज्ञान हो जाता है। ऐसा भी नहीं है कि यह सारा भेद प्रतिभास शब्दपूर्वक होता हो, क्योंकि शब्दोंके अभावमें भी भेद प्रतिभास होता है। जैसे बहुत रंग विरंगे फूलोंका बाग है और ऐसे फूल हैं कि एक ही फूलमें ७–७ तरहके रङ्ग पाये जाते हैं और यों नाना प्रकारके फूल हैं उनपर दृष्टि डालते ही हमें ज्ञान तो सब हो जाता है मगर जितना ज्ञान होता है जिस–जिस पदार्थका ज्ञान होता है उस–उस पदार्थके सम्बन्धमें शब्द रचना नहीं बनती। यों अनेक बार ऐसा होता है और जो अनुभवात्मक ज्ञान है उसमें तो शब्द-रचनाका सवाल ही नहीं है। यों शब्दरचनाके अभावमें भी भेद प्रतिभास होता है। इस कारण यदि शब्दानुविद्धताके कारण कल्पना मानेंगे तो अभेदका जब हम ज्ञान करते हैं तो वहाँ भी शब्दरचना होती है। सो यों अभेद, एकत्व भी कल्पनाका विषय हो जायगा। जैसे हम जुदे जुदे मनुष्योंको जान रहे हों तो उस ज्ञानमें हमारे अन्तरमें शब्द उठते हैं तो इन मनुष्योंमें एक मनुष्यत्व है ऐसा हम अभेद जानेंगे तो उस जानने के साथ भी शब्द उठ सकते हैं और प्रायः उठा करते हैं तो वह भी एक कल्पनाका विषय बन जायगा।

पदार्थोंके अस्तित्वकी व्यवस्था—भैया ! न तो भेद प्रतिभासमें स्मरणा-न्तरभावित्वका नियम है और न शब्दानुविद्धताका नियम है, इससे इस भेद प्रतिभास को कल्पनाकी चीज न मानें। ये सबके सब जुदे हैं, अपनी करनी करते हैं, भरनी भोगते हैं सबका अस्तित्व न्यारा–न्यारा है, सबसे मेरा स्वरूप न्यारा है, इन सबसे अपनेको न्यारा निरख लें। अपनेमें जितनी भी परिणतियाँ होती हैं उनसे भी न्यारा अपने सहज शाश्वत चैतन्यस्वरूपको निरख लें। इस प्रकार इस चित्स्वरूपमें आनेपर तो सर्वविविक्त एकत्वके ज्ञानमें तो कल्याण है, किन्तु समस्त पदार्थोंका एकत्व निरख कर एक कल्पना करें उसमें हमारा कल्याण नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानकी शब्दाकारानुविद्धताके कारण कल्पना अङ्गीकार करनेपर सदा कल्पनाकी उद्भूतिका प्रसङ्ग – अद्वैतवादने यह कहा था कि जो कुछ ये सब जुदे-पदार्थ प्रतीत होते हैं वे सब कल्पनासे मालूम होते हैं, परमार्थसे तो तत्त्व एक ब्रह्म ही है, आत्मस्वरूप ही है। उसके उत्तरमें यह पूछा गया था कि कल्पनाका अर्थ क्या है? क्या कल्पनाका स्वरूप यह है कि शब्दसे रचा हुआ ज्ञान होना। किसी भी ज्ञानमें शब्द रचे ही जाते हों ऐसा नियम तो नहीं है। यदि यह कहो कि जितने भी सब भेदप्रतिभास होते हैं वे शब्दपूर्वक होते हैं। अन्तरमें ये शब्द उठते हैं भींट, दरी, घड़ी आदि तो ये भिन्न-भिन्न मालूम होने लगते हैं। यों शब्दसे उत्पन्न होकर भेदप्रतिभास होनेका नाम कल्पना है अर्थात् जितने भी ये विकल्प होते हैं वे शब्दपूर्वक होते हैं। शब्द उनके कारण हैं और जुदे-जुदे पदार्थ मालूम होना यह कार्य है। यह बात यों युक्त नहीं है कि यदि समस्त विकल्पोंका कारण शब्द होता तो शब्द तो नित्य है, सदा ही रहता है इस अद्वैतवादके सिद्धान्तमें तो सदैव विकल्प होते रहना चाहिए। किन्तु, कहीं-कहीं ज्ञान तो हो जाता है किन्तु शब्द नहीं उठा करते इस कारण शब्दपूर्वक भेदप्रतिभास होता हो यह बात युक्त नहीं है।

शब्द और भेदप्रतिभासकी कार्यकारणताका दो विकल्पोंमें प्रश्न – अथवा मान भी लो कि शब्दसे भेद प्रतिभास हुआ है अथवा शब्दका और विकल्पका कार्यकारण भाव है तो क्या उसका यह अर्थ है कि शब्दसे भेदप्रतिभास हुआ या भेद-प्रतिभाससे शब्द बना। यहाँ दो प्रश्न यों पूछे जा रहे हैं कि भीत में भींट चौकी आदिक शब्द उठे तब ये पदार्थ भिन्न-भिन्न जाने गये या पदार्थ भिन्न-भिन्न जाने जाते हैं तब अन्तरमें उस प्रकारके भिन्न-भिन्न शब्द उठते हैं। ये दो प्रश्न किये गए। यदि यह कहो कि शब्दसे भेदका प्रतिभास होता है तो क्या इसका यह तात्पर्य है कि शब्द से ही भिन्न-भिन्न बात मालूम होती है या यह तात्पर्य है कि शब्दसे भिन्न-भिन्न बात मालूम होती ही है नियम कहाँ लगा है ? शब्दके साथ नियम है या भेदप्रतिभासके साथ एकाकार है ? यदि कहो कि शब्दसे ही भेदप्रतिभास होता है तो प्रथम ही प्रथम आँखें खोलनेके बाद जब कभी चित्र विचित्र नक्शेका या फूलोंका ज्ञान होता है तो वहाँ फिर भेदप्रतिभास न होना चाहिए, किन्तु होता तो है, उस समय जो नाना चित्रित नक्शा अथवा बाग देखा गया है तो देखनेके साथ भेद तो मालूम हो गया, पर शब्द भीतरमें नहीं उठे। तो शब्दसे ही भेदप्रतिभास होता है ऐसा जो तुम्हारा हठ है वह सिद्ध नहीं होता, शब्द न उठे तो भेदप्रतिभास नहीं होता ऐसी बात होती तो चित्रपट आदिकमें भेदप्रतिभास न होना चाहिए।

ज्ञानके पश्चात् शब्दोत्पत्ति होनेसे ज्ञानकी शब्दपूर्वकताका अभाव— और भी देखिये किसी पदार्थको जिस समय हम निर्विकल्प रूपसे जानते हैं तो उस पदार्थके जाननेकी कितनी देर बाद शब्द उठा करते हैं। यद्यपि कुछ ज्यादा अन्तर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं मालूम होता, एक उसकी धुन लगनेके कारण किन्तु पदार्थका ज्ञान करनेके बाद फिर होता है संकेतका स्मरण, उसके बाद होती है कहनेकी इच्छा, उसके बाद बनता है प्रयत्न और उसके बाद तालु ओंठ जिह्वा आदिक इन सबका होता है हलन चलन तब जाकर शब्द उत्पन्न होते हैं। तो पदार्थके ज्ञानके बाद शब्द हुआ करते हैं। लोगों को एक कल्पना की धुन और अभ्यास बनाये रहनेके कारण यह अन्तर शीघ्र विदित नहीं होता किन्तु युक्तिपूर्वक समझ लो, ज्ञान करनेके बाद जब तक उस पदार्थके संकेत का स्मरण न होगा और फिर कहनेकी इच्छा न जगेगी तो प्रयत्न और तालु आदिक के व्यापार न बनेंगे देख लो, सोच लो ज्ञानकी उद्भूतिके बाद इतने विलम्बसे तो शब्दोत्पत्ति होती है और तुम कहते हो कि शब्दसे ही यह भेदप्रतिभास होता है इस कारण यह कहना ठीक नहीं है कि शब्दसे ही ये समस्त पदार्थ जुदे–जुदे मालूम होते हैं।

शब्दसे भेदप्रतिभासकी असिद्धि—प्रसङ्ग यह चल रहा है कि ये सब जुदी–जुदी चीजें ज्ञात होती हैं ये क्यों ज्ञात होती हैं ? यदि एक ही ब्रह्म माना जाय तो ये सब पदार्थ न्यारे–न्यारे अपने ज्ञानमें क्यों आते हैं। इसके उत्तरमें शङ्काकारने यह कहा था कि शब्द उठते हैं अन्दरमें ये भींट, चटाई, दरी आदि ये शब्द भीतरमें जगनेके कारण भिन्न–भिन्न ज्ञात होते हैं। तो भला सोचो तो सही कि ज्ञान पहिले होता है या शब्द पहिले उठते हैं ? खूब विचार करनेपर यह उत्तर मिलेगा कि ज्ञान पहिले जगता है, फिर उसके संकेतका ख्याल होता, उस प्रकारके बोलनेका भाव होता तब ये शब्द उठते हैं। इस कारण यह कहना अयुक्त है कि शब्दसे ही यह भेद प्रतिभास होता है।

शब्दसे भेदप्रतिभासकी अनिवार्यताकी असिद्धि—यदि यह कहो कि हम तो यह मानते हैं कि शब्दसे भेदप्रतिभास होता ही है तो देखिये इन दो विकल्पोंमें कितना अन्तर है। पहिले विकल्पमें तो शब्द पहिले हुआ और ज्ञान पीछे हुआ यह सिद्ध किया था शङ्काकारने। इन विकल्पोंमें पहिले पीछेकी बात कुछ नहीं रखना है। यहाँ शब्द आते हैं तो भेदप्रतिभास होता ही है और बिना शब्दके वह प्रतिभास होता ही है, पर बिना शब्दके जो प्रतिभास होता है वह एक स्वरूप होता है ऐसा अभिप्राय रखकर इस विकल्पने यह कहा कि शब्दसे भिन्न–भिन्न चीज ज्ञात होती ही है। हम दरी, चौकी ऐसे न्यारे–न्यारे शब्द भीतरमें उठायें तो उनके कारण ये भिन्न–भिन्न जचते ही हैं। इस विकल्पमें उसके उत्तरमें यह कहा जा रहा है कि शब्दसे यदि भेद-प्रतिभास होता ही है तो तुम जो यह बोल रहे हो कि एक ही ब्रह्म स्वरूप है तो इन शब्दोंसे भी भिन्न–भिन्न ज्ञान होता कि नहीं, भेदप्रतिभास होता या नहीं ? होता है, क्योंकि शब्दसे तुम भेदप्रतिभास होनेका नियम मानते ही हो तब तुम्हारे आगमसे एकत्वका ज्ञान नहीं हुआ। नानापनका ज्ञान हो गया, नहीं तो गुमसुम बैठो। अगर कुछ बोलोगे तो भेद सिद्ध हो जायगा। तुम अपने शास्त्रकी बात बतावोगे तो शब्द ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो बोलेंगे अथवा उन अक्षरोंके रूपमें शब्द ही तो आये। और शब्दसे तुमने भेद प्रतिभासका नियम कर लिया तो फिर आगमसे भी एक ब्रह्मस्वरूपकी सिद्धि नहीं होती है।

यदि यह कहो कि शब्दसे भेदप्रतिभास नहीं होता, किन्तु भेदप्रतिभाससे शब्द होता है, भिन्न-भिन्न जुदे-जुदे पदार्थका ज्ञान होता है तो उससे शब्दकी उत्पत्ति होती है तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष हो गया। शब्द उठे तो भेदप्रतिभास जगे, भेदप्रतिभास बने तो शब्द उत्पन्न हों। इसकारण शब्दके आकारसे यह ज्ञान बींधा हुआ है ऐसा कल्पनाका लक्षण करना ठीक नहीं है।

जात्यादिके उल्लेखरूप कल्पनाकी मीमांसा – क्या कल्पनाका यह लक्षण है कि जिसमें जाति आदिकका उल्लेख हो सो कल्पना है ? जैसे यह घड़ा है, यह घड़ी है, यह चौकी है इस प्रकारकी जातिका उल्लेख करके जो ज्ञान बनता है उसका नाम कल्पना है क्या तुम्हारा यह मन्तव्य है ? यदि जाति आदिकके उल्लेखका नाम कल्पना रख लिया जाय और उस कल्पनासे भेदका प्रतिभास होता है यों माना जाय तो अभेद ज्ञानमें भी कल्पना ही बनेगी। जैसे घट पट आदिक इन आवान्तर जातियोंका उल्लेख करनेसे कल्पना मान ली है तो समस्त पदार्थोंमें एक सत् यह भी तो जाति हुआ। उस जातिसे कल्पना बन बैठी। तो अभेदज्ञान भी कल्पनाका विषय हो गया इस कारण यह भी तुम्हारा पक्ष ठीक नहीं है कि जिसके जाति आदिकका उल्लेख हो उसे कल्पना कहते हैं। इस पक्षसे तो तुम्हारे ही सिद्धान्तका घात हो जाता है।

असत् अर्थके विषय करने रूप कल्पनाकी मीमांसा--क्या कल्पना इसका नाम है कि असत् अर्थका विषय करे, जो नहीं है ऐसे असत् अर्थको जाने उसका नाम कल्पना है क्या यह कल्पनाका अर्थ है ? यह तो एकदम अयुक्त है। क्योंकि, असत् अर्थ तो वह एक सत्स्वरूप ब्रह्म है जिसके नाना पदार्थोंमें साधारण धर्म देखकर कल्पना किया गया है किन्तु यह भेदप्रतिभास पदार्थ जुदे-जुदे ज्ञानमें आ रहे हैं यह तो एकदम सत्य है. वस्तुभूत है और अर्थकार्य भी उत्पन्न होता है। देखिये काम जो निकलेगा वह वस्तुसे निकलेगा अवस्तुसे न निकलेगा कोई कहे कि तुमको अमुक रोग है तो अच्छा देखो आकाशकी पत्तीको व धुवांकी छालको गधेके सींगसे रगड़कर पी लेना तो तुम्हारा रोग अच्छा हो जायगा। अरे भाई न तो गधेके सींग होते, न आकाशके पत्ते होते और न धुवांकी छाल होती पर ऐसा कोई कहे तो उसका अर्थ है असत अर्थको विषय किया। इस प्रकार जो यहाँ भिन्न-भिन्न चीज जानते हैं क्या यह भी असत् अर्थका विषय करता है।

सर्वथा असत् अर्थमें व्यवहारका भी अभाव—जो असत् अर्थ होता है उससे काम नहीं बनता है। गधेकी सींग, धुवाँकी छाल आदिसे कोई काम भी बनता है क्या ? अरे जो चीज है नहीं उसका नाम भी नहीं रखा जा सकता। यहाँ तो नाम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी इसलिए रख रहे हैं कि छाल कुछ होती ही तो है, धुवां कुछ होता ही तो है, धुवां के छाल नहीं है पर न्यारे-न्यारे दो पदार्थ तो हैं, सत् है तब उसका नाम भी है। अटपट कोई नाम जोड़ दे यह हुई भूल। तो सर्वथा जो असत् अर्थ है उसका तो नाम तक भी नहीं होता। अर्थ कार्य होनेकी बात तो दूर रहो। तो जिससे काम होता है, अर्थकी क्रिया होती है, परिणमन बनता है उसे तुम असत् अर्थ कहते हो यह तो अत्यन्त अयुक्त है। वस्तुभूत तत्त्व अर्थ ही लोगोंको प्रतिभासमें आता है इस कारण यह विकल्प भी ठीक नहीं कि असत् अर्थको विषय करनी है कल्पना और उस कल्पनासे जाने जाते हैं ये समस्त भिन्न-भिन्न पदार्थ। अतएव यह सब मिथ्या है और एक ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा कहना सिद्ध नहीं होता।

अन्यापेक्षासे स्वरूपके अवधारण करने रूप कल्पनाकी मीमांसा अब कल्पनाके स्वरूपके बारेमें यह ५ वां विकल्प पूछा जा रहा है। क्या कल्पनाका यह अर्थ है कि अन्यकी अपेक्षा रखकर पदार्थके स्वरूपका निर्णय बना। यह बात भी युक्त नहीं है क्योंकि अन्यकी अपेक्षा रखकर व्यवहार तो किया जाता, पर स्वरूपका अवधारण नहीं किया जाता। जैसे यहाँ बहुत मनुष्य बैठे हुए हैं तो प्रत्येक मनुष्यके स्वरूपका अवधारण किसी दूसरे मनुष्यकी अपेक्षा रखकर नहीं हो रहा। हाँ वहाँ यह छोटा है, यह बड़ा है यह समझदार है आदिक व्यवहारकी कल्पना तो अपेक्षा रखकर हो गया, पर स्वरूपका अवधारण अन्य पदार्थकी अपेक्षा रखकर नहीं होता। जैसे एक बार अकबर बादशाहने एक सींक लेकर लोगोंसे कहा एक इस सींकको बिना तोड़े छोटी बना दो। और लोग तो सुनकर आश्चर्यमें पड़े कि बिना तोड़े यह सींक छोटी कैसे हो जायगी, पर बीरबलने दूसरी बड़ी सींकको उसके सङ्गमें धर करके कहा देखो महाराज ? अब यह सींक छोटी हो गई। अभी अपन लोग यहाँ बैठे हैं किसीसे कहा जाय कि अपनी किनारे वाली अंगुलीको छोटी कर दो तो क्या वह उसे काटकर छोटी करेगा ? यदि वह समझदार है तो बगलकी दूसरी बड़ी अंगुली लगाकर कह देगा लो यह किनारे वाली अंगुली छोटी हो गयी। तो यह छोटा बड़ापनका व्यवहार तो अन्यकी अपेक्षासे हो जायगा, मगर किसी भी वस्तुके स्वरूपका निर्णय अन्यकी अपेक्षासे नहीं होता। अतएव कल्पनाका यह अर्थ भी नहीं है कि अन्यकी अपेक्षासे पदार्थका निर्णय करना कल्पना है।

भेदप्रतिभासके उपचारकी कल्पनाकी असिद्धि— अब कल्पनाके स्वरूपके बारेमें अन्तिम विकल्प आ रहा है। अद्वैतवादीका यह कहना था कि उपचारसे यह सब भेदप्रतिभास हो रहा है निश्चयसे नहीं। उपचारका नाम है कल्पना। उस कल्पनामें ये सब भिन्नभिन्न पदार्थ जाननेमें आ रहे हैं। तो भला यह तो बतलावो कि उपचार भी किया जाता है तो कोई पदार्थ मुख्य हो तभी तो किया जाता है। जैसे किसी बालकको यह कहें कि यह तो सिंह है यह उपचार किया गया ना। कोई बालक शेर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो नहीं है, पर कहा जाय उसे शेर तो क्या उसने एकदम सत्य बात कही ? क्या यह शेर हो गया ? यदि हो गया तो फिर लोग उसे झट पकड़कर सरकसमें क्यों नहीं भेज देते ? तो उसे जो शेर कहा गया वह उपचारसे है वास्तवमें शेर नहीं है। तो ऐसा उपचार करना तो तब सम्भव है जब दुनियामें कहीं सिंह हुआ करते हैं। यदि सिंह ही कोई न हो तो उपचार क्या किया जाय ? मुख्य हो तब उपचार बनता है। तो क्या यहाँ जो कुछ भी है घड़ी है, दरी है आदिक जो भिन्न भिन्न ज्ञान किये जा रहे हैं उपचारसे किये जारहे हैं उपचारसे किये जारहे हैं ? तो इनका कोई मुख्य है कि नहीं ? अभेदवादने तो सिवाय एक ब्रह्माद्वैतस्वरूपके और कुछ कहना ही नहीं, तो मुख्य नहीं हुआ सो मुख्यके अभावमें उपचार भी नहीं बन सकता है। यदि मुख्य कुछ मान लें तो सिद्धान्त ही तुम्हारा लुप्त हो जायगा इस कारण कल्पनामें आ रहे हैं ये सब जुदे जुदे पदार्थ इस कारण ये जुदे जुदे हैं यह बात कहना तुम्हारी संगत नहीं है।

प्रतिभासमान हेतुसे अद्वैत सिद्ध करनेके अनुमानकी मीमांसा—ब्रह्माद्वैत सिद्धान्त ने एक ही समस्त विश्वको ब्रह्मस्वरूप माना है, अन्य कुछ नहीं है और इसकी सिद्धि उन्होंने एक अनुमानसे की थी कि विश्वमें जो जो कुछ प्रतिभासमान होता है वह सब प्रतिभासके अन्तर्गत है, और प्रतिभासका ही नाम ब्रह्म है, आत्म स्वरूप है। तो जो जो भी प्रतिभासमान होता है वह प्रतिभासके अंतः प्रविष्ट है। जैसे ज्ञि ज्ञान ज्ञानप्रतिभासमें आ रहा था, तो वह प्रतिभासके अन्तर्गत है इसी प्रकार ये घट पट आदिक पदार्थ प्रतिभासमान हो रहे हैं। प्रतिभासका अर्थ है जानकारी। जो जो जाना जाता है वह सब ज्ञानके अन्तर्गत है। तो ये घट पट आदिक भी जाने जा रहे हैं तो यह भी ज्ञानके अन्तर्गत है। ये पदार्थ स्वयं अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखते। यों आत्म द्वैतकी सिद्धिमें जो अनुमान बनाता था और उसमें प्रतिभासमान होनेसे इतना हेतु दिया गया था उस हेतुके बारेमें यह पूछा जा रहा है कि क्या स्वतः प्रतिभासमान होनेसे यह तुम हेतुका मतलब कहते हो या परसे प्रतिभासमान होनेसे यह तात्पर्य कहते हो। जो यह कहा है कि यह पदार्थ प्रतिभासमें समाया हुआ है क्योंकि प्रतिभासमान होनेसे, तो क्या स्वतः प्रतिभासमान हेतु दिया है या किसी परसे प्रतिभासमान हेतु दिया ? स्वतः तो प्रतिभासमान है नहीं क्योंकि यह वादीको इष्ट नहीं और परसे यदि प्रतिभासमान कहते हो तो इसमें तो भेद सिद्ध हो गया क्योंकि परको माना। जहाँपर आधार माना वहाँ भिन्न भिन्न बात ही तो आती है।

घटादिकी प्रतिभासमानताके कथनमें उपचारका आलम्बन—दूसरी बात यह कि तुम यह कहते हो कि यह घट है प्रतिभासमान हो रहा है इस कारण यह भी ज्ञानस्वरूप है यह भी ब्रह्मस्वरूप है यह कथन भी अयुक्त है कारण इसका यह है जो लोग यह बोला करते हैं कि ये घटपट आदिक प्रतिभासमान हो रहे हैं यह विषयमें विषयी धर्मका उपचार करके कहा जाता है। अर्थात् घटपट आदिक तो विषय हैं याने जो ये जाने जा रहे हैं पदार्थ ये तो विषय हैं और विषयी है ज्ञान याने जो इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थोंको जाने वह है विषयी। तो इसका जो ज्ञान धर्म है उसका उपचार पदार्थमें किया है और उपचारका भी कारण यह है कि ज्ञानका विषयभूत है वह। कुछ सम्बंध है तब उपचार हुआ करता है। जैसे किसी बालकको कह दिया कि यह सिंह है तो क्या कोई ऐसे बालको सिंह बोल देता है कि जिसकी हड्डी तो निकली हुई हो, नाक भी बह रही हो। मक्खियाँ भी नाकपर भिनक रही हों, और उन मक्खियोंसे घबड़ा कर वह रोने भी लगे क्या ऐसे बालकको कोई शेर कहेगा ? अरे जो स्वयं कुछ थोड़ा ताकतवर हो, किसी भी कामको अपने बलसे बहुत ही शीघ्र कर लेता हो ऐसे बालक को सिंह कहा करते हैं लोग। तो कुछ थोड़ा बहुत सदृशताका, आधारका, प्रयोजनका किसी भी प्रकारका सम्बन्ध हो तो उपचारकी बात चलती है। ये घट पट आदिक पदार्थ प्रतिभासमान हो रहे हैं ऐसा जो उपचार किया जा रहा है इसका कारण यह है कि ज्ञानके ये अधिकरण हैं, विषय हैं, आधार हैं। इतना जाना जा रहा है तो यों यह कह देते कि ये प्रतिभासमान हो रहे हैं।

स्वपरप्रतिभासनकी स्पष्ट प्रतीति भैया ! जैसे कि मैं पदार्थको जानता हूं यह एक ज्ञान हुआ मैं चौकीको जानता हूँ तो ऐसा जाननेमें अहंका भी निर्णय हुआ कि नहीं भीतर ! मैं चौकीको जानता हूँ ऐसा कहनेमें मैं का भी प्रतिभास हुआ और चौकीका की प्रतिभास हुआ। अद्वैतवाद यह कहता है कि एक सर्वव्यापक मैं का तो प्रतिभास हुआ किन्तु चौकीका प्रतिभास नहीं हुआ, लेकिन मैं पदार्थको जानता हूँ ऐसा ज्ञान बननेमें अन्तरङ्गमें प्रकाशमय अनन्त पर्यायात्मक जैसे चेतन द्रव्यका प्रतिभास हुआ, ज्ञान हुआ उस ही प्रकार बाहरमें प्रकाशमान अनन्त पर्यायात्मक अचेतन द्रव्यका भी प्रतिभास मानना चाहिए। सब कुछ है, मैं भी हूँ और मेरी तरह ये सब अनन्त जीव भी हैं और ये सब जाननहार हैं। जो-जो कुछ भी पदार्थ प्रतिभासमें आ रहे हैं वे सब भी हैं। इन पदार्थोंको मना करके फिर रागद्वेष मिटानेकी तरकीब बनाना यह तो टेढ़ा काम बनेगा। सीधा कार्य तो यह है कि हम सबको मान लें कि मैं भी हूं और ये सब पदार्थ भी हैं। लेकिन, स्वरूपनिर्णय कर लें वह उस ही स्वरूप है, ये सब पदार्थ अपने-अपने स्वरूप हैं और इस प्रकार अपने स्वरूपरूप सबके होनेपर यह निर्णय हो जाता है कि मैं इन सब पदार्थोंसे न्यारा एक आत्मतत्त्व हूँ। एक अपने निर्विकल्प ज्ञानस्वरूपपर आनेके लिए जो इतना कठिन प्रयत्न किया जा रहा है सो भैया ! जो यथार्थ नहीं है उसका प्रतिषेध करके जो कुछ वास्तवमें है ही नहीं उसकी कल्पना करके रागद्वेषको मिटानेका उपाय ठीक न बैठेगा, किन्तु जो पदार्थ उनके स्वरूपका अवधारण करके फिर उनसे अपनेको न्यारा समझले, और वे सब मेरे लिए हितरूप नहीं हैं ऐसा निर्णय करके उनकी उपेक्षा करदें और एक ज्ञानस्वरूप निज अंतस्तत्त्वके दर्शनमें ही रहें, यही होगा कल्याणका उपाय। कल्याणार्थी पुरुषको सभी पदार्थ वैसे ही मानना चाहिए जैसे कि वे अपने-अपने स्वरूपसे हैं।

सर्वथा अद्वैतमें निर्णय, सर्जन, प्रलय आदिकी असिद्धि जो ये आत्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के वचन आदि कहे हैं, सर्वं वैखल्विदंब्रह्म जो कुछ जगतमें है वह सब एक ब्रह्ममात्र है। यह आगम भी तुम्हारे अभेदको सिद्ध नहीं करता क्योंकि अभेदवादमें भेद तो कुछ है नहीं, प्रतिपादक और प्रतिपाद्यका भी भेद नहीं। यह समझाने वाला है और यह समझने वाला है क्या ऐसा प्रतिपाद्य पतिपादकका भेद हैं? गुरु शिष्य भी नहीं हैं अद्वैतवादमें। जब भेद ही सम्भव नहीं है तब फिर आगमसे भी अभेद कैसे सिद्ध सिद्ध होता है और फिर यह भी कहा कि आत्मा ही समस्त विश्वकी रक्षा करता है, प्रलय करता है और स्थिति बनाये रहता है यह भी अभेदवादमें सम्भव नहीं है क्योंकि अद्वैत एकान्त, केवल एक हीं तत्त्व जहाँ माना गया है वहाँ कारण कार्यका भेद नहीं हो सकता। भला बतलावो उस एक अद्वैतब्रह्मसे यदि जगतकी उत्पत्ति हो गई तो कार्य क्या बना और कारण क्या हुआ? हैं ना कुछ कार्य कारण। तो लो यह द्वैत हो गया। दो चीजें तो हो गयीं। एक कार्य है और एक कारण है। कार्य कारणकी सिद्धि द्वैतसे हुआ करती है। द्वैत बिना कार्य कारण भेद बनता ही नहीं है और फिर नित्य एक किसी भी तत्त्वमें उसे आत्मा कहो, ब्रह्म कहो जो अपरिणामी नित्य तत्त्व है उससे कुछ कार्य बन ही नहीं सकता है। कोई परिणमन शील हो तो उसमें तो कार्य सम्भव है, पर नित्य एक ब्रह्ममें कार्य कारण सिद्ध नहीं हो सकता अतएव यह कहना भी सङ्गत नहीं होता कि वही एक परमात्मस्वरूप समस्त विश्वकी रचनाका और विश्वकी स्थितिका कारण है।

वास्तविकता यह है कि ये समस्त पदार्थ हैं और स्वभावसे परिणमनशील हैं, अतएव प्रतिसमय अपनी योग्यताके अनुसार बाह्यका निमित्त पाकर निरन्तर परिणमते रहते हैं। यह तो है सर्जनका स्वरूप, पर कोई एक अद्वैत ब्रह्म है और वही सत् है, वही सबकी रचनाका कारण है यह बात युक्त नहीं होती। यह भी यों कहा जा रहा है कि प्रमाणका जो स्वरूप बनाया कि स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय करना सो प्रमाण है वह सिद्ध शुद्ध स्वरूप है, समस्त पदार्थ हैं और उनका विधिवत् निर्णय करना सो प्रमाण है।

स्रष्टत्वके प्रयोजनकी पृच्छना— अद्वैतवादमें एक ब्रह्मको जगतकी सृष्टिका कारण कहा है। इस प्रसङ्गमें यह पूछा जा रहा हैकि ब्रह्म या ब्रह्मा अथवा परमात्मस्वरूप या कोई प्रभु जगतकी विचित्रताको किसलिए बनाता है अथवा नानारूपोंमें जो जगतकी सृष्टि करता है उसका प्रयोजन क्या है? यदि किसी प्रयोजनके बिना सृष्टि बनाने लगे तो प्रयोजनके बिना तो मंदबुद्धि वाले तक भी प्रवृत्ति नहीं करते। बिना प्रयोजन ही अटपट प्रवृत्ति करने वालेको तो लोकमें उन्मत्त कहा करते हैं। तो प्रत्येक कार्यमें विवेकियोंका कुछ न कुछ प्रयोजन होता है। तो जगतकी इतनी बड़ी सृष्टि बनानेका कुछ प्रयोजन तो होना चाहिए। क्या यह प्रभु व्यसन होनेसे सृष्टिको रचता है? व्यसन उसे कहते हैं कि जो फलके बिना प्रवृत्ति की जाय। यो तो व्यसनके कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रयोजनके बिना ही प्रवृत्तिमें तो मूर्खताका प्रसङ्ग होता है। जितनी बुद्धिमानी सहित प्रवृत्तियाँ होती हैं वे सब प्रयोजनसे व्याप्त हैं। प्रयोजन बिना बुद्धिमानोंकी प्रवृत्ति नहीं होती अतएव केवल व्यसनवश जगतकी सृष्टि कोई कर देता हो यह बात तो कुछ शोभा युक्त नहीं है और न ऐसा सम्भव है।

कृपावश सर्जनकी असिद्धि – यदि कहा जाय कि कृपावश होकर परके उपकारके लिए ब्रह्म सृष्टिको बनाता है तो भला बतावो उस ब्रह्मके अतिरिक्त पर तो कुछ चीज थी ही नहीं। किसके उपकारके लिए सृष्टि बनायी गई। कृपा तो तब सम्भव है जब कोई कृपा किये जानेके लिये हो तो सही। जब कृपायोग्य पुरुष हों तो उनका आश्रय करके कृपाका भाव बनता है। जब केवल एक ब्रह्म ही तत्त्व है तो परके अभाव होनेसे कृपा किसपर करेगा अथवा मान लो कि पर था जिसपर कृपा की तो कृपाका तो अर्थ यह है कि उनपर दया करें, उन्हें सुखी करे। दुःख न होने दे फिर नरक आदिकके दुःखोंका पुरुषोंके लिए विधान क्यों बनाया, फिर तो कोई दुःखी न रहना चाहिए था अर्थात् यदि प्रभु कृपाके वश होकर सृष्टि करता है तब तो जगतमें कोई दुःखी न रहना चाहिए। सारा जगत एकान्तसे नियमतः सुखी होना चाहिए था। वह यदि कृपालु है तो सब जीवोंको सुखी ही बनाये। और, बात यह है कि सृष्टिसे पहिले अनुकम्पा किये जाने योग्य याने जिनपर दया की जानी चाहिए ऐसे पुरुषोंका जब अभाव है तो किसका आलम्बन करके उस ब्रह्मके अनुकम्पा जगी जिसके कृपाके वश इसे स्रष्टा मान लिया जाय? यदि अनुकम्प्य जीव थे देव मनुष्यादि अभ्युदयवाद विभूतिवान तब तो उनका कभी प्रलय न करना चाहिए। जो सुखी जीव हैं उनका विनाश न करना चाहिए, केवल दुःखी जीवोंका ही प्रलय करना चाहिए ताकि उनका दुःख दूर हो, और जो सुखी हों उनके प्रलयसे उसे क्या लाभ है बल्कि इसमें अदयाका दोष लगता है। इस कारण कृपाके वश होकर प्रभु सृष्टि रचता हो यह बात तो बनती नहीं है।

वस्तुकी वास्तविकता – तत्त्व तो यह है कि जगतमें समस्त पदार्थ अनादिसे अनन्तकाल तक अपना सत्त्व लिए हुए हैं। जो है उसका परिणमन होता है, जो नहीं है उसके परिणमनका अवकाश क्या ? है ही नहीं तो उसकी क्या दशा ? और, जो हैं केवल परिणमनशील है। अब जैसे कि प्रत्यक्ष भी विदित होता है, एक पदार्थ दूसरे पदार्थका निमित्त पाकर अपनी योग्यताके अनुसार अपना परिणमन बनाने लगता है तो इसीप्रकार निमित्त नैमित्तिक योगसे यह समस्त जगत बना हुआ है। कोई अलग से इन पदार्थोंको रचता रहता हो ऐसी बात नहीं है। पदार्थ स्वयं सत् हैं और वे परिणमते रहते हैं, इसके विरुद्ध पक्षमें अर्थात् यदि पदार्थकी रचना करने वाला कोई माना जाता है तो वहाँ प्रश्न यह होना चाहिए कि जगतकी सृष्टिको कोई किसलिए करता है ? व्यसनके वश होकर और कृपाके वश होकर सृष्टिकी बात तो सङ्गत बैठी नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सृष्टिमें अदृष्टापेक्षता होनेपर स्वतन्त्रताका घात— यदि यह कहा जाय कि करता तो है वह कृपाके वशसे ही जगतके जीवोंकी सृष्टि लेकिन प्राणियोंका जैसा उनका भाग्य है, जैसी उनकी करनी है उसकी अपेक्षा रखकर ही यह प्रभु इस जगतको सुख और दुःखसे युक्त बना देता है। यह भी बात सङ्गत नहीं है क्योंकि अदृष्टकी अपेक्षा रखकर याने जिसका जैसा भाग्य है उसके अनुकूल जीवोंको सुखी अथवा दुःखी बनानेमें तो प्रभुकी स्वतंत्रताका घात हो गया, फिर स्वतन्त्रता क्या रही। जो नित्य एकरूप वस्तु होती है जैसा कि ब्रह्म एक बिराट् काल्पनिक सर्वव्यापक कोई सत्त्व या शक्ति यानी ऐसा कोई कुछ यदि नित्य होकर दूसरेकी अपेक्षा रखने लगे तो फिर सत्ता ही क्या रही ? जो नित्य एकरूप वस्तु है तो चाहे समर्थ स्वभाव हो चाहे असमर्थ स्वभाव हो पर दूसरेकी अपेक्षा उसमें सम्भव नहीं है।

पदार्थोंके अस्तित्व और वर्तनामें अन्यापेक्षताका अभाव—वास्तविकता तो यह है कि कोई भी सत् अपने सत्त्वके लिए अपनी परिणतिके लिए दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखतों। यहाँ तक कि जो औयाधिक हैं, परका निमित्त पाकर विकाररूप परिणमन करता है, तो सन्निधान तो जरूर है उसका, जिसका निमित्त पाकर उपादानमें विकार जगा है, पर यह उपादान अपने परिणमनको जगानेमें स्वतन्त्र है, विकाररूप परिणमन में भी परिणमन दृष्टिसे परतन्त्र नहीं है, क्योंकि परिणमतेमें परका क्या, न परिणमते को पर करेगा क्या ?

अथवा यों समझ लीजिए कि अपेक्षा हुआ करती है जीवोंमें। जीव ही तो किसीकी अपेक्षा रखेगा। जो अचेतन है वह अपेक्षाका परिणाम तो रख नहीं सकता। तो जैसे अग्निका सन्निधान हुए चूल्हेपर पानी भरी बटलोही चढ़ी है, सन्निधान तो है अग्निका अब वहां ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है कि वह जल उष्णतारूप परिणम जाता। तो जलका जो उष्णतारूप परिणाम है उसकी जलवस्तुमें ही निगरानी करे वह जल उष्णतारूप परिणमनेमें किसीकी अपेक्षा नहीं रख रहा है। मोटेरूपमें वस्तुकी स्थूल दृष्टिमें तो यह जच रहा है कि जलके गर्म होनेमें अग्निकी अपेक्षा है। है, फिर भी जल जो अपने ही प्रदेशमें अन्य जो-जो उष्णतारूप परिणमता रहता है उस परिणमनमात्रमें अन्यकी अपेक्षा नहीं पड़ती।

पदार्थोंकी वर्तनामें अन्यापेक्षताके अभावका एक दृष्टान्त— इसे एक दृष्टान्तसे और समझिये। जैसे जहाँ पूछा जाता है कि भगवानकी दिव्यध्वनिको कौन बनाता है, तो उत्तर यह देते हैं कि जैसे मेघोंकी गर्जना स्वभावतः होती है ऐसे ही प्रभुकी दिव्यध्वनि स्वभावतः होती है। जैसे मेघोंके गरजनेमें किसीकी अपेक्षा नहीं रहती है ऐसे ही प्रभुकी दिव्यध्वनिमें अन्यकी अपेक्षा नहीं रहती और उसके लिए दृष्टान्त दिया है कि जैसे मृदङ्ग बजाने वाला पुरुष उस मृदङ्गपर हाथ मारता है उस पर हाथ मारा लेकिन मृदङ्ग जो एक आवाज अपनी उत्पन्न करता है उसे उत्पन्न करने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में वह मृदङ्ग किसीकी अपेक्षा नहीं रखता। इसको एक बहुत सूक्ष्म प्रज्ञाके साथ विचारना होगा। अपेक्षा रखकर भी परिणतिके कालमें परिणमनके सिलसिलेमें परिणमनके लिए अपेक्षा नहीं होती है।

स्रष्टाकी अदृष्टापेक्षतामें विडम्बना—वस्तुकी आन्तरिक निरपेक्षता समझनेकी एक सूक्ष्म बात है और फिर यहाँ तो बहुत मोटी बात कही जा रही है। जो पदार्थ नित्य है, एक स्वरूप है ऐसे उस ब्रह्म वस्तुके प्राणियोंके अदृष्टकी अपेक्षा नहीं बन सकती है। यदि वह रचना है तो यथेष्ट रचता चला जाय, और यदि प्राणियोंके भाग्यके कारण प्राणियोंकी विचित्र-विचित्र रचना होती है, तो यह क्या एक अन्तर्गडु लगा दिया जैसे कहते हैं ना कि यह क्या बीचमें एक लाठी अड़ा दी, बीचमें क्या निपोर कर दिया। जब प्राणियोंका सुख दुःख सब कुछ प्राणियोंके भाग्यसे हो रहा है। उसके खिलाफ ब्रह्म अथवा प्रभु कुछ नहीं कर पा रहा है। तब फिर सीधा अदृष्टके कारण ही प्राणियोंका सुख दुःख मान लीजिए। बीचमें एक शल्य बनाने वाला, विवाद उत्पन्न करने वाला, पीड़ाकारी यह अन्तर्गडु क्यों माना जा रहा है।

अदृष्टापेक्षतामें स्रष्टाकी अवधीरणा—और फिर भला बतलावो कोई प्रभु अपना कार्य करनेमें किसी प्राणीके भाग्यकी अपेक्षा करने लगे तो इसमें प्रभुका सम्मान हुआ कि तिरस्कार? तिरस्कार हुआ। जैसे आपको कोई छोटा काम करना है, आप मालिक हैं और किसी एक छोटे नौकरकी बाट जोहते हुए बैठे रहें तो इसमें आपका बड़प्पन बना कि तिरस्कार? यह तो तिरस्कार हुआ। तो यों ही कोई ब्रह्म अथवा प्रभु यदि जगतकी विचित्र सृष्टि बनानेमें किसीको सुखी किसीको दुःखी बनानेमें प्राणियोंके भाग्यकी अपेक्षा रखे तो इसमें तो प्रभुका अपमान हुआ। और, अपेक्षा रख रहे हैं तो दयालुता नहीं रही। जो समर्थ प्राणी है, जिसे सुखी कर सकते हैं और उसे सुखी करनेके लिए किसीकी विवशता बन जाय तो दयालुता कहाँ रही। समर्थ होकर भी यदि दया नहीं रख सकते हैं तो कृपा कुछ नहीं रही। कृपालु पुरुष किसीको दुःख देनेकी चाह नहीं करता है। उसकी चाह यही रहती है कि किसी तरहसे दूसरोंका दुःख दूर हो। तो यह भी कहना कि जगतमें एक ब्रह्मतत्त्व है और वह जगतकी सृष्टिका कारण है तो सृष्टिका कारणभूत यह ब्रह्म सिद्ध नहीं होता।

सर्जनके उदाहरणमें मकड़ीके दृष्टान्तकी विरुद्धता—यदि यह कहा जाय कि जैसे मकड़ी जालेके पूरनेमें स्वभावसे ही परिणति कर लेती है इसीप्रकार यह आत्मा यह ब्रह्म इस जकतके रचनेमें स्वतः ही परिणति करने लगता है। देखा ही होगा सबने कि मकड़ी कैसा स्वतन्त्र जालपूरणका काम करती रहती है, यहाँसे वहाँ तक जाल पूरती चली जाती है। तो जैसे मकड़ी जालके बनानेमें स्वभावसे परिणति करती है इसीप्रकार ब्रह्म भी नानाप्रकारके जगतके विधान करनेमें स्वतः ही परिणति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करता है, तो यह बात ठीक यों नहीं बैठती क्योंकि मकड़ी स्वभावसे परिणति नहीं करती। किन्तु प्राणियोंके भक्षणकी लम्पटतासे करती है और प्रतिनियत कारणसे उत्पत्ति होनेके कारण वह प्रवृत्ति कादाचित्क है जो ब्रह्मको स्वभावत: जगत सृष्टिमें कारणको सिद्ध करनेके लिए मकड़ीका दृष्टान्त दिया गया है। उसमें तो सभी बातें असिद्ध हैं। प्रथम तो मकड़ी स्वभावत: परिणति नहीं करती किन्तु उसे क्षुधा होती कि वेदनासे पीड़ित होकर वह जाल पूरती है और प्राणियोंके भक्षणमें लम्पटता उसके साथ लगी है तिसपर भी उसकी प्रवृत्ति कादाचित्क है। जब उसके भूख लगी, प्राणि-भक्षणकी चाह जगी तो वह एक जाल पूरती है।

मकड़ीके जालपूरणमें मायाचार—देखिये मकड़ी मायाचारसे प्राणियोंको खाती है। ये हिंसक जीवोंकी दशायें देखिये। बिल्ली बहुत मायाचारसे चूहोंको पकड़ती है, कबूतरोंको ऐसे मायाचारसे पकड़ती कि उन्हें पता ही नहीं पड़ता कि यहां कोई हमारा भक्षक है। चुपचाप बैठी रहे, मरी सी पड़ जाय, जब दाव लगे तो झट पकड़ लेती है। उन सबसे भी अधिक मायाचार इस मकड़ीमें पाया जा रहा है। यह कैसा विकट जाल पूरती है कि वैसा जाल कोई सूतका पूरना चाहे तो कठिन पड़ जाय। उसमें कोई मक्खी आदिक फस जाय तो फसी ही रहे। भाग ही न सके। जैसे लोग घरमें अनाज भर लेते हैं और जब चाहे निकाल-निकालकर खाते रहते हैं इसी प्रकार वह मकड़ी जब चाहे तब उन मक्खियोंको निकाल-निकालकर खाती रहती है। ऐसा दृष्टान्त इस ब्रह्मको सृष्टिका कारण बनानेमें दिया है, इसमें पक्षकारको कुछ संकोच नहीं होता क्या ?

अद्वैतविरोधके निन्दावादकी अयुक्तता—अद्वैतके समर्थनमें जो यह कहा था कि जो अद्वैत नहीं मानता, द्वैत देखता है, इस जगतको नानारूप निरखता है उसकी अपने आगममें निन्दा की गई है कि वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है जो इस जगतमें इन पदार्थोंको नानारूपोंमें तकता है। तो यह निन्दावाद भी तुम्हारा ठीक नहीं है क्योंकि वह तो पक्षकारकी अपनी चीज है, अपने शास्त्र हैं, कुछ भी लिख डालो लेकिन समस्त प्राणियोंको जितने भी प्रमाण होते हैं वे सब भेदके ग्राहकरूपसे होते हैं। हर एक कोई प्रत्यक्षसे निरखकर समस्त पदार्थोंको भिन्न-भिन्न निरखता है और ऐसा भिन्न-भिन्न यों निरखा जाता है कि जिस पदार्थसे जो परिणतियाँ बन सकती हैं उस प्रकारकी परिणति हुआ करती हैं। गायको निरखकर गायका दूध दुह लेना, घोड़ेको देखकर उसपर सवारी करके यथेष्ट जगहपर पहुंच जाना ये सब भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे नियत-नियत भिन्न-भिन्न तरहकी परिणतियाँ भी की जा रही हैं और फिर फिर भी कहते हो कि यह सब झूठ है। और, जो सब पदार्थोंमें एक कल्पनाके द्वारा माना गया एकत्व है उस एकत्वकी ही सत्यताकी हठ बना रहे हो तो तुम्हारा यह निन्दावाद बिल्कुल अयुक्त है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्षके विधातृत्वके विकल्प—सर्वाद्वैतके समर्थनमें जो यह कहा है कि प्रत्यक्ष जो है वह केवल विधिरूपको ही ग्रहण करता है, निषेधरूपसे नहीं ग्रहण करता। निषेधरूप ग्रहण करनेमें आये तो पदार्थ नाना बनेंगे। जैसा यह पदार्थ है सो यह नहीं है, जो यह है सो अमुक नहीं है इसप्रकार यदि निषेधको ग्रहण करे प्रत्यक्ष तब तो नानापन बने, पर निषेधको प्रत्यक्ष ग्रहण ही नहीं करता। प्रत्यक्ष तो विधिका ग्रहण करता है, इसके पोषणमें यह भी कहा था कि आँखें खुलनेके बाद सर्वप्रथम कल्पनायें जगनेसे पहिले जो कुछ विदित होता है वह एक प्रकाशरूपमें विदित होता है। वह है प्रत्यक्षका असली कार्य। बादमें माना जाता है कि यह अमुक चीज है यह अमुक चीज है इसप्रकार तुमने प्रत्यक्षको विधिपरक बताया है। तो वहाँ हम पूछते हैं कि प्रत्यक्ष विधिका साधक है तो प्रत्यक्षके इस विधातृत्वका नाम क्या है ? क्या विधातृत्वका अर्थ इतना है कि सत्ता मात्रका ज्ञान करले अर्थात् प्रत्यक्षसे सत्मात्रका ज्ञान कर लेनेका नाम ही क्या विधिप्रतिपादन है अथवा पदार्थमें रहने वाले साधारण वस्तुके स्वरूपका ज्ञान कर लेनेका नाम विधातृत्व है, अर्थात् प्रत्यक्ष 'है' को ग्रहण करता है 'न' को नहीं, तो वह किस 'है' को ग्रहण करता ? क्या साधारण अस्तित्व मात्र है को ग्रहण करता ? जिस किसी वस्तुका नाम न जुड़े क्या इस प्रकारकी है को ग्रहण करता है अथवा पदार्थोंमें पदार्थका जो असाधारण स्वरूप बना हुआ है अर्थात् विशेष विशेष स्वरूप जो दूसरे पदार्थमें न मिले क्या ऐसे असाधारण स्वरूपको ग्रहण करनेका नाम 'है' का जानना है, ये दो विकल्प किये गए।

प्रत्यक्षमें सत्तामात्रके अववोधकी मान्यताकी अयुक्तता-- उनमेंसे प्रथम विकल्प तो यों अयुक्त है अर्थात् सत्तामात्रका अववोध करना प्रत्यक्षका काम है। यह बात इसलिए खण्डित है कि जो नित्य है व्यापी है विशेषसे निरपेक्ष है ऐसी सत्ता मात्रकी प्रतीति तो स्वप्नमें भी नही होती। जो बात है ही नहीं उसका भी क्या स्वप्न हुआ करता है ? जैसे किसी स्वप्नमें क्या गधेका सींग भी दिखता है ? कदाचित् यह भी कह सकते हो कि स्वप्नमें भी कभी ऐसा गधा दिख जायगा कि जिसके भैंसकी तरह खूब लम्बे सींग हों। तो स्वप्नमें ऐसी भी बात तो दिख सकती है, लेकिन स्वप्न में वही चीज दिखेगी जो सत् हो कहीं न कहीं। मान लो स्वप्नमें एक अच्छी सीग वाला गधा देख लिया तो दुनियामें कहीं न कहीं गधे तो हैं हीं और सींग भी हैं। जो पदार्थ बिल्कुल न हो उस पदार्थका मूल भी स्वप्नमें नहीं देखा जा सकता। जो सर्वथा असत् है, है ही नहीं उसकी कल्पना कौन कर सके। न जागृत अवस्थामें असत्की कल्पना उठती और न सोई हुई अवस्थामें कल्पना उठती। अथवा सोई हुई और जागी हुई हालतमें कहीं कल्पनाओंका अन्तर भी नहीं होता। कोई स्वप्नमें कुछसे कुछ कल्पनाएँ बनाता है तो कोई जागृत अवस्थामें, कल्पनायें बना लेता है। बल्कि जागृत अवस्थामें लोग बड़ी–बड़ी कल्पनाएँ बना डालते हैं तो यह तो मनकी कल्पनाओंकी बात है। तो इसीप्रकार जो अपरिणामी हो, नित्य हो, निरंश हो, विशेषकी अपेक्षा न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रखे। भला ऐसी भी कोई चीज होती है जो सदा रहती है, उसमें कभी भी परिणमन नहीं होता और फिर वह निरंश है। उसमें कोई डिग्री नहीं, कोई नाप तौल नहीं और फिर व्यापी हो तिसपर भी विशेषकी अपेक्षा न रखता हो ऐसी सत्ता स्वप्नमें भी प्रतीत नहीं होती। जैसे खरगोशका सींग असत् है इसीप्रकार विशेष निरपेक्ष एकत्व, ब्रह्म, यह भी असत् है।

असाधारणवस्तुस्वरूपके अवबोधरूप विधातृत्वमें नाना पदार्थोंकी सिद्धि—यदि कहो कि हम सत्तामात्रका अवबोध नहीं करते किन्तु असाधारण वस्तु-स्वरूपका परिच्छेद करते हैं तो ठीक है, हमारा तुम्हारा फिर विवाद क्या रहा। हम भी पदार्थ नाना मान रहे और पदार्थका यह नानापन तब बनता है जब सब पदार्थों का अपना-अपना विशेष-विशेष स्वरूप हो और प्रत्यक्षके द्वारा यदि असाधारण स्व-रूप जाना गया है तो उससे तो भेद सिद्ध हो गया, फिर तुम्हारा अद्वैतका प्रतिपादन करने वाला जो आगम है उसमें प्रत्यक्षसे बाधा हो गयी। देखो ऐसी कोई बात सिद्ध नहीं हो सकती जिसको आगममें भी लिख दिया जाय लेकिन प्रत्यक्षसे बाधा आये तो वह बात मानी नहीं जा सकती है। कोई यों अनुमान बना ले कि पापकर्म सुख देता है क्योंकि जो-जो कर्म होते हैं वे सुख दिया करते हैं जैसे पुण्यकर्म। पुण्य भी कर्म है और वह सुख देता है यों पाप भी कर्म है वह भी सुख देगा, कोई ऐसा अनुमान कदा-चित् बना ले कई किताबें भी ऐसी लिख डाले लेकिन ऐसी रचना कर देनेसे सिद्धि तो न हो जायगी बात, क्योंकि वह अनुभवसे बाधित है, या कोई ऐसा ही अनुमान करेगे लगे कि अग्नि ठंडी होती है क्योंकि पदार्थ होनेसे। जो-जो पदार्थ होते हैं वे ठण्डे होते हैं। तो अग्नि भी पदार्थ है इसलिए अग्नि भी ठण्डी होनी चाहिए। ऐसा कोई अनुमान करे तो उसकी यह बात निभ नहीं सकती। यदि वह हठ करे तो उसके हाथमें चमीटे से आग उठाकर धर दो तो उसे पता पड़ जायगा कि आग गर्म होती है या ठण्डी। और, फिर यह देख लीजिये कि जितने भी प्रत्यक्ष ज्ञान होते हैं वे सब भिन्न-भिन्नरूपसे ग्रहण करनेकी शैलीसे ही प्रवृत्त होते हैं। विधातृत्वका जो यह लक्षण माना है कि जो असाधारण वस्तुके स्वरूपका ज्ञान करे वह विधाता प्रत्यक्ष है। तो जगत नानारूप है। यहाँ पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, अनन्त है, इस बातको प्रत्यक्ष ही सिद्ध कर रहा है अतः यह बात मानना असङ्गत है कि जगतमें एक ब्रह्मस्वरूप है और पदार्थ अन्य कुछ चीज नहीं है।

अपूर्व अर्थोंके व्यवसायक ज्ञानमें प्रमाणत्वकी युक्तता—जब निर्विशेष एकत्व कुछ चीज नहीं रहा तो निर्विशेष एकत्वको, ब्रह्मको मानने वाला ज्ञान प्रमाण है यह बात ठीक नहीं बैठती। पदार्थ हैं और उनका संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय-रहित जो परिज्ञान होता है वह प्रमाण है, किन्तु यह एकत्व समस्त पदार्थोंमें अनुगत अथवा समस्त पदार्थोंकी दृष्टिका मूलभूत कोई एक ब्रह्म है यह बात प्रत्यक्षसे ज्ञात होती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। ऐसा करने वाले लोग भी प्राय: अपने कहनेमें सन्तुष्ट तो हैं नहीं। किन्तु एक सिद्धान्तका पक्ष है, ऐसी मान्यताके कुलमें उत्पन्न हुए हैं इसलिए भी ऐसा ही कहा जा सकता है। कितनी ही स्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनमें मन गवाही नहीं देता पर कहना पड़ता है। तो एक समस्त विश्वको एक ब्रह्मस्वरूप मानने वालेको भी सन्तोष नहीं हो, फिर भी वह बोलता रहे कि एक ही ब्रह्म है जगतमें अन्य कुछ नहीं है यह बात युक्त नहीं है। समस्त पदार्थ हैं, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि सभी अपना-अपना स्वरूप लिए हैं। जो जैसा पदार्थ है उसका वैसा निर्णय करना ऐसा निर्णयात्मक ज्ञान प्रमाणभूत है। इससे जो प्रमाणका स्वरूप कहा गया है कि जो स्व और अपूर्व अर्थ निश्चय कराये ऐसा ज्ञान प्रमाणभूत है, यह प्रमाणका स्वरूप पूर्ण निर्दोष है।

आकारभेदसे पदार्थोंके भेदकी असिद्धि—अद्वैतवादने द्वैतका खण्डन करने के लिये यह विकल्प रखा था कि तुम्हें जो जगतमें ये सब पदार्थ न्यारे-न्यारे नजर आ रहे हैं वे क्या इस कारण नजर आते हैं कि इसके देशभेद हैं कि यहाँ रखा कुछ व अन्य जगह रखा कुछ या इस कारण न्यारे-न्यारे नजर आते हैं कि इसमें कालभेद है, कल कुछ था आज कुछ है अथवा इसमें आकार न्यारे-न्यारे हैं, इस भेदसे इन पदार्थों को भिन्न-भिन्न मानते हो ? ऐसे तीन विकल्प करके भिन्न-भिन्न पदार्थोंके होनेका खण्डन किया था। उसके उत्तरमें कह रहे हैं कि यह विकल्प उठाना अयुक्त है क्योंकि सर्वत्र आकारभेदसे ही पदार्थोंका भेद जाना जाता है। जब कभी देश-भेदसे भी भेद समझा जा रहा हो कि घड़ी यहाँ है, खम्भा यहाँ है, वहाँपर भी आकारभेद अवश्य है और भेद जो दृष्टिमें आते हैं वे देशके भेदसे नहीं किन्तु आकारके भेदसे भेद प्रतीत होते हैं। जहाँ कालका भी भेद हो, कल अमुक यह था, परसों यह था, इस तरह भी भेद देखे जा रहे हों वहाँ पर भी आकारके रूपसे ही भेद प्रतीतिमें आते हैं और ये सब आकारभेद, सभी पुरुषोंको 'मैं यह जानता हूँ, मैं यह जानता हूं' यों अहमहमिकया सबको अनुभव है कि ये सब आकारभेद हैं। अतः यह कहना अयुक्त है कि देशभेदसे भेद नहीं, कालभेदसे भेद नहीं, आकारभेदसे भेद नहीं, सर्वत्र आकारभेदसे पदार्थका भेद माना गया है, यह आत्मा सुख शरीर आदिकसे भिन्न कोई एक सत्पदार्थ है, यह बात आगे भी सिद्ध करेंगे और अनुभवसे भी यह सिद्ध होता है।

देश काल आकारके अभेदके विकल्पसे एकत्वकी भी असिद्धि—अभेद-साधनामें भी तो यह विकल्प उठाया जा सकता। जो पुरुष द्वैत नहीं मानता, पदार्थों को भिन्न-भिन्न नहीं मानता, केवल एक ही ब्रह्म एकत्वस्वरूप मानता है उसको भी तो यह विकल्प बनाया जा सकता है कि क्या देशके अभेदसे एकत्व है या कालके अभेद से एकत्व है या आकारके अभेदसे एकत्व है ? यदि देशके अभेदसे पदार्थोंमें एकरूपता मान लोगे तो देशका भी अभेद कैसे हुआ ? कहो अन्य देशके अभेदसे, तो अनवस्था हो जायेगी। यदि कहोगे पदार्थोंमें स्वतः ही अभेद है तो देशके अभेदसे अभेदकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कल्पना करना व्यर्थ है। जितने शब्दोंमे तुमने इन तीन विकल्पोंसे पदार्थोंकी भिन्नता का निराकरण किया था उतने ही प्रतिपक्षी शब्दोंसे पदार्थोंके अभेदका निराकरण होता है। इसी प्रकार कालके अभेदसे यदि पदार्थोंका अभेद मानते हो तो अतीतकाल और अनागतकाल इनका तो अभेद हो ही नहीं सकता। आकारके अभेदसे भी अभेद मानना प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

सामान्यविशेषात्मकताके निर्णयसे भेद व अभेदकी सिद्धि--भैया ! यह ही युक्तिसे सिद्ध है कि सर्वत्र पदार्थोंमें सामान्य धर्म भी है, विशेष धर्म भी है। जब हम सामान्य धर्मकी मुख्यतासे देखते हैं तो अभेद नजर आता है और विशेषकी मुख्यतासे देखते हैं तो भेद प्रतीत होता है और यह सामान्य और विशेष पदार्थोंसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? ऐसा प्रश्न यदि करो तो उसका उत्तर यह है कि भिन्न भी है, अभिन्न भी है यह। केवल एक समझनेके लिए प्रतिपाद्य प्रतिपादकका भेद डालकर संज्ञाविशेष नामके भेदसे भेद है, किन्तु वस्तुमें सामान्य अभेदरूपसे रह रहा है और विशेष भी अभेदरूपसे रहता है। अतः समस्त पदार्थ हैं, अपने-अपने स्वरूपसे हैं, उनमें जातिकी कल्पना करके एकत्व स्थापित किया जाता है, पर पदार्थ तो सभी अपने अपने प्रदेशोंमें अपने स्वरूपसे स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत् हैं। प्रतिव्यक्ति वस्तुओंका भेद काल्पनिक नहीं है किन्तु अभेद काल्पनिक है।

अभेदवादमें अविद्याकी निवृत्तिकी असंभवता - जो यह कहा था कि यह सब अविद्यासे नजर आता है और अविद्या कोई वास्तविक चीज नहीं है क्योंकि वह ब्रह्मसे अर्थान्तरभूत वास्तविक कोई सत् नहीं है, इसी कारण इस अविद्याका हटाव हो जाता है यह भी सारहीन कथन है। तुम तो यह कहते हो कि अविद्या वास्तवमें कुछ चीज नहीं है इसलिए अविद्या अलग हो जाती है अगर वास्तवमें होती तो अलग नहीं हो सकती थी, परन्तु बात यहाँ यों है कि यदि अविद्या वास्तवमें अवस्तुभूत है तो जो अवस्तुभूत होता वह प्रयत्नसे हटाया नहीं जाता। जैसे खरगोशके सींग अवस्तुभूत हैं तो क्या उसकी कोई निवृत्ति करेगा ? जो असत् है वह नहीं हटाया जा सकता। हटाया जाने योग्य तो सत् हुआ करता हैं। दूसरी बात यदि अविद्या वास्तवमें है तो वह भी हटायी नहीं जा सकती। अविद्या यदि असत् है तो प्रयत्नसे हटाते किसे हो ? और जो सत् है उसका विनाश किसी तरह किया ही नहीं जा सकता है। जो तत्त्वतः सत् हैं उनका भी यदि विनाश कर दिया जाने लगा, हटाया किया जाने लगा तो घट पट आदिक तो सत् पदार्थ हैं उनकी भी निवृत्ति हो जाय अथवा जो घट आदिक सत् पदार्थ हैं उनका एक देशसे दूसरे देशमें हटाव किया जा सकता है। अविद्या यदि असत् है तो उसका हटाव सम्भव नहीं है। अतः यह कहना कि अविद्या ब्रह्मसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है इसी कारण यह हटा दिया जाता है यह बात अयुक्त है।

विकारोंका कथञ्चित् सत्त्व और असत्त्व— वास्तवमें तो यह है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मामें जो अज्ञान रागद्वेष विकार उत्पन्न हुए हैं वे विकार न तो सर्वथा सत् हैं और न सर्वथा असत् हैं, किन्तु इस दृष्टिसे तो वे विकार सत्त हैं कि वे आखिर आत्माके ही परिणमन हैं, वस्तुमें पाये जाते हैं। परिणमन न हो वस्तुमें ऐसी बात होती ही नहीं है। और असत् यों कहा जाता है कि वे कोई शाश्वत चीज नहीं हैं, जो शाश्वत हो वही परमार्थ सत् होता है। तो अविद्या सद्भूत भी है असद्भूत भी है। यदि सर्वथा सत् हो तो नहीं हट सकता, सर्वथा असत् हो तो हटाया कैसे जाय ? यों अविद्या भी है, विद्या भी है, एकत्व भी है, नानात्व भी है, यह सब स्याद्वादसे सिद्ध हो जाता है। यदि यह कहो कि घट पट घर बाग आदिक ये सारे पदार्थ अविद्यासे रचे गये हैं इस कारण ये भी वास्तवमें सत् नहीं है तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष आता है। अर्थात् जब यह सिद्ध हो जाय कि घट आदिक पदार्थ अविद्यासे रचे गए हैं तब तो यह माना जायगा कि इसका सत्त्व नहीं है और जब यह समझमें आया कि इसका सत्त्व वास्तवमें नहीं है तब यह सिद्ध किया जा सकता है कि ये सब अविद्यासे रचे गए हैं और यो तो इनके प्रतिपक्षमें यों इनसे पूछ बैठे कोई कि क्या अभेद विद्यासे रचा गया है। यदि अभेद विद्यासे रचा गया है तो उसमें भी यही अन्योन्याश्रय दोष है। जब विद्यासे रचा गया यह ब्रह्म है यह सिद्ध हो तब तो ब्रह्मकी सत्ता बने और जब ब्रह्म परमार्थ सत् है यह समझमें आये तब यह सिद्ध कर सकेंगे कि ब्रह्म विद्यासे रचा गया है।

अविद्याके विनाशमें प्रागभावके दृष्टान्तकी असङ्गतता—जितनी भी युक्तियाँ अद्वैतके समर्थनमें दी थी उनकी क्रमशः मीमांसा की जा रही है। अनादि अविद्याके विनाशकी सिद्धि करनेमें एक प्रागभावका दृष्टान्त दिया था। जैसे यह घड़ी बनी तो जब भी बनी उससे पहिले तो घड़ी न थी और उससे पहिले कब तक घड़ी न थी ? अनन्तकाल तक। तो अनादिकालसे उस घड़ीका प्रागभाव चल रहा था। जब अनादिकालसे चल रहे हुए प्रागभावका भी विनाश हो सकता है अर्थात् घड़ी बन गयी तो घड़ीका अभाव तो नष्ट हो गया ना तो इसीतरह अनादिकालसे अविद्या चल रही थी उसका भी विनाश हो जाता है। ऐसा प्रागभावका दृष्टान्त देना यों ठीक नहीं बैठता कि प्रागभाव वस्तुको छोड़कर अन्य कुछ नहीं है। घड़ीका प्रागभाव घड़ीकी अवस्थासे पहिले जो जो अवस्थायें रही हैं उन स्कंधोंसे बना है अथवा घड़ी अवस्थासे प्राक् जो जो भी अवस्थाएँ हैं उनका नाम है घड़ीका प्रागभाव, तुच्छ स्वभाव वाला अभेद नहीं माना गया है, पर यहाँ अविद्या तो तुम तुच्छ स्वभाववाला मानते हो, उसका उच्छेद कैसे सम्भव है इस कारण यह मानो कि पदार्थ सब हैं, जीव सब हैं, उन सब जीवोंका कभी विकाररूप परिणमन चलता है और उपाधिका सम्बन्ध मिटनेपर उनका स्वभाव रूप परिणमन हो जाता है।

अभेदवादमें अविद्याको विद्याका प्रागभाव माननेकी असङ्गतता—इसी सिलसिलेमें जो यह भी कहा था कि अविद्या और कुछ चीज नहीं है, तत्त्वज्ञानका जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रागभाव है उसका ही नाम अविद्या है अर्थात् विद्याका प्रागभाव अविद्या कहलाता है वह भी कथनमात्र है। अविद्याको यदि तत्त्वज्ञानका प्रागभावरूप मान लोगे तो प्रागभाव भेदविज्ञानरूप कार्यको नहीं कर सकता। देखिये बड़े कामकी एक स्थिति समझमें आती है कि किसी भी पदार्थका प्रागभाव पदार्थको उत्पन्न नहीं करता। इतना तो कहा जा सकता कि प्रागभावके विनाशके बिना कार्य नहीं होता यह तो बताया जा सकता, पर प्रागभावकी कार्यकी उत्पत्तिमें सामर्थ्य नहीं है। क्या घटका प्रागभाव घटको बना देता है ? हाँ घटके प्रागभावके विनाशके बिना घट नहीं बन सका, यह बात तो वहाँ है, पर घटका प्रागभाव घटको बना दे यह सम्भव नहीं है।

कार्यमें प्रागभावके कारणत्वकी असिद्धि– कार्यकी अगर सूक्ष्म दृष्टि लेना चाहते हो तो ऋजुसूत्रनयपर दृष्टि दीजिये ऋजुसूत्रनय वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है। यह नय उस पर्यायसे एक भी समय पहिले अतीत पर्यायको निरखता ही नहीं है और न भविष्यकी अतिनिकटवर्ती पर्यायको भी निरखता। केवल एक वर्तमान पर्यायको देखता है। वह वर्तमान पर्याय क्या पूर्व पर्यायसे उत्पन्न हुई है ? वैसा कार्य कारणके प्रकरणमें बताया तो यह जरूरी है क्या कि वर्तमान पर्यायका उपादान पूर्वपर्यायसंयुक्त द्रव्य है लेकिन ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे जब हम देखने चलते हैं तो अतीत पर्याय वर्तमान पर्यायका कारण नहीं है। तो फिर क्या कारण है ? यदि यह पूछा जाय तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे यह उत्तर मिलेगा कि ऋजुसूत्रनयमें जगतमें कहीं कार्य कारणका विधान नहीं है। न कोई पदार्थ कार्य है और न कारण है। प्रत्येक पर्याय अपने ही समयमें अपने कारणसे उत्पन्न होता है यह एक ऋजुसूत्रनयका विषय है। इसका एकान्त करके कहीं अध्यात्ममें अन्य शैली बना लेना तो युक्त नहीं बैठता, वह हठवाद हो जायगा। और, इससे ही नये तरहका निश्चय एकान्त निकाला गया है। तो जैसे घटका प्रागभाव घटकार्यको उत्पन्न नहीं करता, उसमें सामर्थ्य ही नहीं है कि कार्य बना दे। यह बात अवश्य है कि घटके प्रागभावके विनाशके बिना वह घट कार्य उत्पन्न नहीं हो पाता। ऐसे ही विद्याका प्रागभाव जो अविद्या है तत्त्वज्ञानका प्रागभावरूप अविद्यातत्त्व ज्ञानकर्मको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं है। हां इतनी बात है कि तत्त्वज्ञानके प्रागभावरूप अविद्याके विनाशके बिना तत्त्वज्ञानरूप कार्य नहीं बन सका।

अविद्यामें भेद विज्ञान स्वभावरूपताकी असिद्धि– यदि यह कहो कि अविद्याका कार्य भेदविज्ञान नहीं किन्तु वह अविद्या भेदज्ञान स्वभावरूप ही है। जिस अविद्यासे सारे संकट मिटते हैं मोक्ष बनाते हैं उस अविद्याकी बात चल रही है। मोहादिक विकाररूप तीव्र अज्ञान अंधकारकी बात नहीं। अद्वैतवादी कह रहा है कि उस अविद्यासे मुक्ति मिलेगी। जितने भी तप हैं, ज्ञानार्जन हैं, उपदेश हैं ये सब अविद्या माने गए हैं और इस अविद्यासे फिर निर्वाणमार्ग मिलता है। ऐसा अद्वैतवादीने कहा था, उसी सिलसिलेमें चर्चा चल रही है कि अविद्याका कार्य भेदज्ञान तो नहीं किन्तु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह भेदज्ञान स्वभावरूप ही है। ऐसा यदि अद्वैतवादी मानें तो इसके मायने यह हुआ कि तत्त्वज्ञानके प्रागभावरूप अविद्यामें भेदज्ञानका स्वभावरूप हो गया। इसमें तो अद्वैत सिद्धान्तका यों भी निराकरण है कि इस सिद्धान्तमें अभेद किसी अन्य स्वभाव रूप नहीं माना गया किन्तु कुछ न होना इस प्रकार तुच्छ स्वभावरूप माना गया है।

अभेद या भेदके ग्रहण विद्या या अविद्याकी उत्पत्तिकी असिद्धि— बात यों है कि पदार्थमें भेद ग्रहण करे तो अविद्या बन जाय और अभेद ग्रहण करे तो विद्या बन जाय यह व्यवस्था नहीं है। अद्वैतवादी तो यों कहते हैं कि तुम्हें यदि एकत्व समझमें आया तो समझो कि हम विद्यामें आ गए और पदार्थ नाना समझमें आये कि यह जीव है यह पुद्गल है इत्यादि तो समझलो कि तुम अविद्यामें आ गए। तो भेद ग्रहण करनेसे अविद्या बन जाय और अभेद ग्रहण करनेसे विद्या बन जाय ऐसी व्यवस्था नहीं है। किन्तु, जिसमें सम्वाद हो वह तो सत्य है और जिसमें विसम्वाद हो वह असत्य है। विसम्वादको तो सब लोग जानते हैं। जिसमें विवाद खड़ा हो जाय, दूसरा बाधक प्रमाणभूत ज्ञान बने समझो कि वह विसम्वाद है। जहाँ विसम्वाद है वह ज्ञान असत्य है व जहाँ संवाद है। वह ज्ञान सत्य है। सही तौरसे एक दम निर्दोष निर्णय हो, जहाँ विवाद न उठ सके वह सम्वाद है और सम्वादसे सत्य ज्ञान माना जाता है। अब देखिये सम्वाद ही वस्तुमें अभेद बताता है। इसलिए भेदकी बातकी बात कहना भी सत्य है और अभेदकी बात कहना भी सत्य है पर सद्भूत क्या है। प्रत्येक पदार्थ न्यारे न्यारे स्वतंत्र स्वतंत्र अपने आपमें सद्भूत हैं। इन पदार्थोंका अपह्नव करना युक्त नहीं है।

अविद्याकी अवस्तुभूतताकी मीमांसा— और भी देखिये ! जो बात कही गयी थी कि जब यह अद्वैतवादीसे पूछा था कि अविद्या ब्रह्मसे भिन्न चीज है या अभिन्न चीज है ? तब अद्वैतवादीने यह उत्तर बोला था कि भिन्न और अभिन्नका विचार वस्तुमें किया जाता है, अविद्या तो वस्तु ही नहीं है उसमें भिन्न अभिन्न आदिकका विचार नहीं बनता। तो इसमें यह पूछा जा रहा है कि क्या अविद्या विचारके अगोचर है, विचारणीय नहीं है ? क्या इसलिए अविद्या अवस्तु है ? अथवा अविद्या अवस्तु है अतः विचारके अगोचर है ? यहाँ दो विकल्प किए गए। देखिये ! यह तो कोई नियम नहीं है कि जो–जो अवस्तु होता है उसका विचार नहीं किया जा सकता। जैसे— इतरेतराभाव अवस्तु है फिर भी उसका विचार तर्क–वितर्क चलता है। जैसे घड़ीमें चौकी नहीं है, यह जो परस्परमें एक दूसरेका अभाव है यह अभाव अवस्तु है या वस्तु ? अवस्तु है, पर विचार तो हर एक कोई उसका कर सकता है। तो यह भी एकान्त नहीं है कि जो–जो जितने अवस्तु हैं वे विचार नहीं किये जा सकते हैं। इतरेतराभाव आदिक अनेक अवस्तु हैं फिर भी यह ऐसा है, यह ऐसा है यों उनके सम्बन्धमें अनेक तरहके विचार बनाये जा सकते है। शाब्दिक और प्रतिभासमें आने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाले विचार बनते हैं इस कारण यह नहीं कह सकते कि अवस्तु होनेसे अविद्याके सम्बन्धमें भिन्न है या अभिन्न है यह विचार नहीं उठाया जा सकता ।

विचारागोचर होनेसे अवस्तुभूताकी सिद्धिका प्रतिषेध—यह भी नहीं कह सकते कि अविद्या विचारके विषयभूत नहीं है इसलिए अवस्तु है। अनेक पदार्थ ऐसे होते हैं जिनका विचार तो नहीं किया जा सकता और है वस्तु। विचारमें न आ सकनेसे कोई अवस्तु बन ही जाय यह ठीक नहीं है। जैसे गुड़की मिठाई, मिश्रीकी मिठाई, गन्नेकी मिठाई इनमें कुछ तारतम्य है कि नहीं ? गुड़की मधुराई और किस्म की है और गन्नेकी मधुराई और किस्मकी है, सभी लोग प्रायः बोल देंगे कि इनकी मधुराईमें अन्तर है। उन सबकी मधुराईके विषयमें यों शब्द तो सभी बोल देंगे, पर और विशेष बात क्या कर सकते हैं ? तो मधुराई सबकी अलग अलग है लेकिन तारतम्य है अवश्य और उस तारतम्यका प्रतिपादन भी नहीं किया जा सकता। तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि विचारके अगोचर होनेसे अविद्या अवस्तु बन जाय और इन पदार्थोंके खाने-पीनेसे उत्पन्न हुए जो सुख हैं उनमें भी तारतम्य है। मिश्री चख कर जो मौज माना है उसमें भी तारतम्य है मगर उन तारतम्योंको कोई दूसरे पुरुष के लिए बना भी सकता है यह तो ऐसा है और यह ऐसा है तो यह जैसे तारतम्य दूसरेको नहीं बताया जा सकता फिर भी वस्तुस्वरूप है, तारतम्य है, स्वभावभेद है, इसी प्रकार चाहे अविद्या भी विचारके अगोचर हो फिर भी वह एक भाव है, विचार के अगोचर होनेसे अविद्या अवस्तुक बन जाती, यह कहना युक्त नहीं है।

अवस्तुभूतके प्रभाव और अभावकी विचारासहता—और, फिर यह भी बताओ कि भिन्न है या अभिन्न है, ऐसा विचार बनाना यह प्रमाणभूत है या नहीं ? पहिले तो यह निर्णय बता दो। किसी भी पदार्थमें हम ऐसा विचार यदि कर लें कि ये भिन्न हैं या अभिन्न हैं ? अथवा इस प्रसङ्गमें जो यह प्रश्न उठाया गया था कि यह अविद्या ब्रह्मसे भिन्न है या अभिन्न ? जैसे ब्रह्मको तो सद्भूत माना था अद्वैतवादने और सब दृश्यमान पदार्थोंको मिथ्या माना, तो यह पूछा गया कि यह माया ब्रह्मसे भिन्न है या अभिन्न ? तो भिन्न और अभिन्नका विचार करना प्रमाणभूत होता है या नहीं ? यदि प्रमाणभूत है, ऐसा मानते हो तो प्रमाणके जो विषयमें आता है उस अविद्याका असत्त्व कैसे रहा ? और जब अविद्या सत् ही नहीं है तो मोक्षकी इच्छा करने वाले साधु संतोंका उस अविद्याके विनाशके लिए प्रयास करना सफल कैसे है ? क्या कोई आकाशमें भी लाठी मारा करता है ? आकाश यद्यपि सत् है पर अमूर्त है, उसपर कोई लाठी मारेगा क्या ? जो अवस्तु है, सर्वथा असत् है उसके उच्छेदके लिए प्रयास करना फलवान नहीं है। यदि कहो कि भिन्न अभिन्न आदिकका विचार करना अप्रमाण है तो फिर वह वस्तुका विषय कैसे बन सका जिससे कि फिर तुम्हारा यह कहना बने कि भिन्न और अभिन्नका विचार वस्तुमें होता है। तो यह बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तुम्हारी युक्त नहीं है कि सारा विश्व एक स्वरूप है. एक ही सत् है और ये सब जो कुछ नजर आते हैं माया हैं अथवा उसका ही यह सब बाग है, यह बात शोभा नहीं देती है।

अर्थक्रियाकारी पदार्थोंकी अप्रतिषेध्यता—पदार्थ सब अपने आप अपने ही स्वरूपसे हैं, अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको लिए हुए हैं। सबका परिणमन उनका अपने अपने प्रदेशोंमें ही हो रहा है और इसी कारण यह सब जगत चल रहा है। किसी एक जगहसे कोई काम नहीं निकला करता, काम तो पदार्थसे बनता है। ये समस्त पदार्थ न्यारे न्यारे हैं। अनन्तानन्त तो जीव हैं और इससे भी अनन्तानन्त गुने पुद्गल परमाणु है, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य हैं और लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर कालाणु अवस्थित है। यों असंख्यात कालद्रव्य हैं। ये सब अपने अपने परिणमनमें स्वतंत्र हैं। कोई किसी दूसरे पदार्थकी परिणति लेकर नहीं परिणमता। इन समस्त पदार्थोंमें त्रिकाल एक दूसरेका अभाव है। कोई एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थरूप नहीं बन सकता। सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें न्यारे न्यारे हैं, उनके अस्तित्वका कभी निषेध नहीं किया जा सकता।

अविद्यासे अविद्याकी शान्तिकी असंगतता—अद्वैतवादने यह कहा था कि जैसे कीचड़से मलिन जलको शान्त (स्वच्छ) करनेके लिये कोई विशेष चूर्ण डाला जाता है तो वह चूर्ण उस धूलको भी दबा देता है और खुद भी दब जाता है। उसके दुहरे काम होते हैं, इसी प्रकार शास्त्राध्ययन मनन सत्संग ये भी सब यद्यपि हैं तो अविद्या क्योंकि एक अभेद ब्रह्मस्वरूपको छोड़कर शेष सब अविद्या है लेकिन अविद्या याने भेद जानना कि अविद्यासे पदार्थोंको नाना मानना यह भ्रमरूप अविद्याको शान्त कर देती है और यह शास्त्र श्रवण आदिक रूप अविद्या भी खुद शान्त हो जाती है यह कहना भी ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि धूल तो सद्भूत वस्तु है और उस को शान्त करने वाला चूर्ण भी सद्भूत है तो जो सद्भूत होते हैं उनमें तो बाधक बन जाता है। चूर्ण डाला तो बाधक बन गया और पानीका कीचड़ बाध्य हो गया तो जो सत् है उनमें तो बाध्य बाधक भाव बनता है पर जो सद्भूत ही नहीं है तो असत्का सत्के साथ बाध्यबाधक भाव नहीं चल सकता। दोनों ही सत् हो तो उनमें बाध्यबाधकपना चल सकेगा। जैसे सांप और नेवला इनमें परस्पर बैर हो तो ये सत् हैं तभी ना। कहीं खरगोशके सींग और घोड़ाके सींगमें तो विरोध नहीं बन जाता। एक असत् हो एक सत् हो उनमें भी विरोध नही बनता। यह जो चूर्ण है वह भी एक धूल है सो वह सो दूसरी धूल वे जो कि पानीको मलिन कर रही है तो वह चूर्ण उस दूसरी धूलकी सामर्थ्यका अपनयन कर देती है सामर्थ्यको निकाल देती है और इस तरहसे यह चूर्ण उस कीचड़का बाधक बन गया।

विष द्रव्यके दृष्टान्तसे अविद्या दार्ष्टान्तकी विषमता—अथवा विष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य दूसरे विषको मारनेके लिये डाला जाता है। एक विषमें दूसरा विष डालनेसे विष समाप्त हो जाता है। तो वह विष द्रव्य योग्य विष द्रव्यके सामर्थ्यसे हट सकता है पर किसी अन्य कार्यको न करेगा, और ये सद्भूत हैं दोनों। यह विष भी जो विष मारनेके लिए किया गया है और वह विष भी दोनों सत् हैं तो बाध्य बाधक भाव बनता है पर अविद्यामें और भेदवादके उच्छेदमें बाध्य बाधक भाव नहीं बन सकता, सारे पदार्थ ये भिन्न-भिन्न स्पष्ट नजर आते हैं। जैसे अभेद वस्तुका स्वभाव है, उसे कोई मिटा न सकेगा ऐसे ही भेद भी वस्तुका स्वभाव है। अनेक पदार्थोंमें अभेद करना यह वस्तुका स्वभाव नहीं। यह तो कल्पनाकी चीज है पर प्रत्येक वस्तुमें उनके ही गुण पर्यायका अभेद जो ज्ञात होता है यह वस्तुका स्वभाव है। तो जैसे अभेद वस्तुका स्वभाव होनेसे दूर नहीं किया जा सकता इसी प्रकार भेद भी प्रतिव्यक्ति स्वरूप रहना यह भी मिटाया नहीं जा सकता।

समस्त पदार्थोंकी स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्तासे लोकव्यवस्था—भैया ! समस्त पदार्थ भिन्न-भिन्न अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए हैं। सारा विश्व एक ब्रह्म-स्वरूप हो ओर उसकी परिणतियाँ हों, उसका बगीचा हो ऐसा नहीं है किन्तु सभी पदार्थ हैं और वे अपनी-अपनी योग्यतानुसार परिणमते रहते हैं। तभी विश्वकी व्यवस्थामें अन्तर नहीं आता। कोई एक बनाने वाला हो विश्वको तो आज कहीं काम चल रहा है, कल कहीं चल रहा हैं तो कोई पदार्थ परिणमन करनेसे रुक भी जाय लेकिन जितने पदार्थ हैं वे सब सत् हैं और उनका निरन्तर परिणमनेका स्वभाव है। एक समय भी अन्यरूप न परिणम सके, स्वतः ही जैसी योग्यता है उसके अनुसार वह परका निमित्त पाकर अथवा असाधारण परको निमित्त न किए बिना परिणमता रहता है। वस्तु है और वह परिणमनशील है इस कारण जगतकी व्यवस्था बनी है।

समस्त पदार्थोंमें अस्तित्व और वस्तुत्व गुणका भाव—भैया ! पदार्थ व्यवस्था यो यथार्थ रूपमें मान लीजिए इस तरह है कि प्रत्येक पदार्थ हैं तो जरूर। यदि न होते तो फिर चर्चा किसकी की जाती। सबका अस्तित्व है अब इसके पश्चात् यह भी बात देखी जाती है कि किसी पदार्थका अस्तित्व किसी दूसरे पदार्थरूप नहीं है तभी तो हम कहेंगे कि घड़ी लावो तो घड़ी ही उठाकर लावोगे, चौकी साथमें न उठा लावोगे। तो प्रत्येक पदार्थका स्वरूप अपना-अपना न्यारा है इसीका नाम है वस्तुत्व गुण। जैसे 'है' को मान लिया कि सर्वत्र है पर 'है' यदि स्वच्छंद बन जाय, एक पदार्थका 'है' दूसरे पदार्थके 'है' रूप बन जाय तो पदार्थ भी न रहेगा। यदि चौकी घड़ी बन जाय तो न चौकी रही न घड़ी रही। घड़ी चौकी बन बैठी। तो प्रत्येक पदार्थ है, अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। यह हुआ यह हुआ वस्तुत्व गुण। अब यहाँ तक दो बातें तो आ गयी हैं और अपने ही स्वरूपसे हैं दूसरेके स्वरूपसे नहीं हैं

समस्त पदार्थोंमें द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्व गुणका भाव—कोई भी वस्तु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो, पर है ही है निरन्तर एक समान बना रहे यह बात कल्पनामें नहीं आती। कोई भी पदार्थ है तो उसमें अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। अवस्था कुछ न बने और 'है' हो जाय यह हो ही नहीं सकता। चाहे कोई अवस्थाएँ समान भी हों, पर प्रतिसमयमें परिणमन जरूर होगा तब है रह सकता है तब उसकी सत्ता बन सकती है। तो निरंतर अवस्थाएँ बनाते रहना यह भी गुण प्रत्येक पदार्थमें है, इसका नाम है द्रव्यत्व गुण। अब यहाँ तक तीन बातें मान ली गई, अस्तित्व अर्थात् पदार्थ है वस्तुत्व अर्थात् यह पदार्थ अपने स्वरूपसे है दूसरेके पिण्डसे नहीं है, चौकीका पिण्ड चौकीमें ही है. घड़ीका पिण्ड घड़ीमें ही है। यह भी गुण प्रत्येक पदार्थमें बना हुआ है कि वह अपने ही रूपमें रहेगा, दूसरेके रूप न बन जायगा। फिर चौथी बात यह भी है कि प्रत्येक वस्तु प्रति समय परिणमती रहती है। अब यहाँ द्रव्यत्व गुण ऐसी स्वच्छन्दता करने लगे कि हमको तो ऐसा हुक्म मिला है कि परिणमता रहूं। चाहे जिस रूप परिणम जाय तो यों न बन सकेगा। परिणमेगा प्रत्येक पदार्थ पर अपने ही स्वरूपमें प्रदेशमें पिण्डमें परिणमेगा। यह हुआ अगुरुलघुत्व गुण। तो कोई पदार्थ न वजनदार और न हल्का बन जायगा। इसका अर्थ यह लेना कि कोई पदार्थ किसी दूसरेके गुणको लेले तो वजनदार हो जायगा। किसी पदार्थका गुण पर्याय निकलकर दूसरेमें चला जाय तो हल्का हो गया। अगुरुलघुत्व शब्दका यह अर्थ करना है कि कोई पदार्थ किसी दूसरे के गुण पर्यायको नही लेता। प्रत्येक पदार्थ अपने ही गुण पर्यायरूपमें परिणमता है। ये चार बातें प्रत्येक पदार्थमें मिलती हैं।

समस्त पदार्थोंमें प्रदेशत्व और प्रमेयत्व गुणका भाव—अब यह सोचिये कि पदार्थका कोई आकार ही न हो, प्रदेश ही न हो तो यह है पना और परिणमन किसमें बोला जायगा। प्रत्येक पदार्थका अपना-अपना प्रदेश है, अपना खुदका एरिया है कुछ न कुछ। तो यही हुआ प्रदेशत्व गुण और एक बात प्रमेयत्वकी भी पायी जाती है, जो पदार्थ है वह किसी न किसी ज्ञानके द्वारा प्रमेय है। मानलो पदार्थ हों सभी और वे किसीके जाननेमें न आये तो हम क्या समझें, क्या व्यवस्था बनायें और फिर आत्मा जब निर्दोष हो जाता है तो उसका ज्ञान इतना विशाल बनता है कि जो भी सत् हो वह नियमसे उसके ज्ञानमें ज्ञात होता है। यों पदार्थमें ये ६ साधारण गुण हैं।

समस्त पदार्थोंमें असाधारण गुणका भाव—साधारण गुणोंसे भी अभी पदार्थ व्यवस्था नहीं बनी। पदार्थमें कोई गुण विशेष होना चाहिए ताकि यह जान सकें कि यह चौकी है, यह घड़ी है। तो यह कहलाता है असाधारण लक्षण। जैसे जीवमें है चेतन गुण, पुद्गलमें है मूर्तिकता रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। ये पुद्गलके गुण हैं धर्मद्रव्यमें हैं गतिहेतुपना, जीव और पुद्गल गमन करे तो उसमें निमित्त कारण बने। अधर्मद्रव्यमें गुण है स्थितिहेतुभूत, जो चलते हुए जीव पुद्गल ठहरें तो उनकी स्थितिमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्त कारण है अधर्मद्रव्य। आकाश द्रव्यका गुण है अवगाहनहेतुत्व जहाँ सभी पदार्थ ठहर जायें। और, काल द्रव्यका साधारण लक्षण है द्रव्यके परिणमन होनेका कारण यो विशेष लक्षण भी है। वस्तुव्यवस्था इस तरह है और इस दृष्टिसे ज्ञात कर लीजिये कि अनन्तानन्त जीव है, अनन्तानन्त पुद्गल है। एक धर्मद्रव्य एक अधर्मद्रव्य एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य है। ये सभी पदार्थ अपने अपने प्रदेशमें हैं और निरन्तर परिणमते रहते हैं।

स्वरूपास्तित्वके विज्ञानमें कल्याण लाभ—समस्त पदार्थोंमें साधारणधर्म देखकर उसकी जाति बनी तो यह एक कल्पनाकी चीज हो गयी मगर यह प्रमाणीक कल्पना है। यों समस्त पदार्थ अनन्त है। कोई एक पदार्थ सत् ब्रह्म हो और सभी पदार्थ मिथ्या हों ऐसी बात नहीं है। ऐसा ज्ञान करनेसे लाभ क्या होता है? जब हम यह जान जायेंगे कि प्रत्येक पदार्थ अपना अपना ही स्वरूप लिए हुए हैं परिणमन लिए हुए हैं तो यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि मेरा काम मैं ही कर सकता हूं और दृश्यमान इन सभी पदार्थोंके काम ये ही सब कर पायेंगे। अतएव मेरा किसी पर अधिकार नहीं है प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वरूपके स्वामी हैं एसा ज्ञान होनेसे मोह टलता है। मोंहके दूर होनेसे कल्याणका मार्ग मिलेगा। जीवका बैरी केवल एक मोह भाव ही है। इस जीवका किसी पदार्थसे कुछ लेना देना नहीं है कुछ सम्बन्ध भी नहीं है सदा संयोग भी नहीं रहता और जब तक संयोग है तब तक भी सभी अपने अपने में परिणमन रहे हैं किसीका कोई दूसरा सहयोगी नहीं बन रहा है फिर भी जीव पर पदार्थोंमें मोह बनाये तो समझ लीजिये कि कितनी यह अयथार्थ वृत्ति है और विपदा है। यह मोहकी विपदा तत्त्वज्ञानसे समाप्त होती है। यों कहो कि सारे संकट ज्ञानसे दूर होते हैं। सर्व संकट विनाशी तो एक ज्ञान प्रज्ञा ही है।

भेदकी पारमार्थिकता—अद्वैतवादीने यह भी कहा था कि जैसे स्वप्न अवस्थामें पदार्थ भिन्न भिन्न नजर आते हैं और अवस्थाभेद है नहीं अर्थात् कुछ वस्तु है नहीं और फिर भी भेदप्रतिभास होता है, इससे मालूम पड़ता है कि भेद पारमार्थिक नहीं है अथवा भिन्न भिन्न प्रतिभास होना कोई पारमार्थिक नहीं है। जैसे स्वप्न आया, तो स्वप्नमें जङ्गल, शेर, हाथी, हिरण आदि सभी दीखते हैं। यों ही जगतमें सभीका अलग अलग ज्ञान बनता है तो क्या यह सही है? सो आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसा परिणमन अभेदवादमें भी लाया जा सकता हैं। तो जैसे विशेषका अभाव है स्वप्न दशामें ऐसे ही अभेदका भी तो अभाव है। विशेषका व्यापक सामान्य भी तो नहीं रहा। जब विशेष नहीं रहा तो फिर सामान्य कहाँ रहा? यदि विशेषके बिना सामान्य हो जाय, मनुष्य सामान्य तो होता नहीं कोई और मनुष्यत्व वहाँ बैठा रहे इस तरह यदि विशेषके अभावमें भी सामान्य बन जाय तो कछुबेके रोम तो हैं नहीं और उसमें रोमपनेको सत्त्व बन जाय, ऐसा तो होता नहीं है। कोई वस्तु है नहीं और उसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है मान लिया जाय यह तो एक सामान्य बात हो गयी। कहीं १०–२० आदमी खड़े हैं और उन्हें मान लिया कि ये तो १०–२० खम्भे खड़े हुए हैं, सो यदि विशेष के बिना सामान्य मान लें तो उन खम्भोंमें भी मनुष्यत्व हो जाय ऐसा होता नहीं है। इस कारण यह कहना कि स्वप्न दशामें भेद नहीं है और भेद प्रतिभास होता है इस लिए भेद प्रतिभास झूठ है तो यों अभेद भी नहीं है और अभेद प्रतिभास भी न हो सकेगा। जब स्वप्नमें सिंह, आदमी, खम्भा आदिक दिख रहे हैं तो कभी ऐसा भी स्वप्नमें ख्याल हो जाता कि यह तो स्वप्न है. मैं जागकर तो देखूँ, स्वप्नमें ही जगकर देखता है तो वहाँ सिंह, खम्भा, आदमी आदिक कुछ नहीं है, इतनी यक बात स्वप्नमें हो जाती है तो जहाँ स्वप्नमें विशेष और भेद ज्ञान हो सकता है वहाँ सामान्य भी ज्ञात हो सकता है। जैसे जगते हुए में पूजन, प्रवचन, तपश्चरण आदिक किए जाते हैं ऐसे ही स्वप्नमें भी तो किए जाते हैं। तो स्वप्नमें विशेष नहीं हैं और सामान्य ज्ञान हो जाता है तो विशेषके अभावमें सामान्यका भी असत्त्व है।

स्वरूप दृष्टिसे ही सत्यासत्यका निर्णय—अच्छा यह बात बतलावो कि स्वप्नकी दशामें भेद कैसे नहीं है, भिन्न भिन्न पदार्थ कैसे नहीं हैं। सायद कहो कि जग जानेपर वह सब झूठ लगता है इससे मालूम होता कि स्वप्नकी बात झूठ है। स्वप्नमें जो पदार्थ भिन्न भिन्न दिख गए वे झूठ हैं ऐसा अद्वैतवादीने कह डाला। बस बातपर उन्हें यह जवाब दिया जा सकता है कि स्वप्नमें जो भिन्न भिन्न पदार्थ दिख रहे हैं वे जगनेपर नहीं दिखते अतः सब झूठ है तो जगनेपर भी तो जो सब पदार्थ भिन्न भिन्न दिखते हैं। वे सोनेपर नहीं दिखते तो जाग्रत दशामें नानारूपसे देखे गये सो वे भी सब झूठ हो जायेंगे। तुम्हारा कहनेका जो यह मंतव्य है कि जैसे स्वप्नमें देखी हुई सारी बातें झूठ हैं ऐसे ही जगती हुई हालतमें भी देखी हुई सारी बातें झूठ हैं, पर बात यह है कि कोई भी बात एक जगह असत्य हो जाय तो दूसरी जगह भी वह बात असत्य ही हो जाय ऐसा तो नहीं होता। यदि एक जगह झूठ हो जानेपर सब जगह तुम झूठ मान लोगे तो देखो प्रातः काल घूमनेके समय सड़कपर किसी जगह कोई ठूठ दिखा और उसको पुरुष समझ लिया। कुछ अंधेरा उजेला था इस कारण, जब उसके पास पहुँच गए तो समझ लिया ओह जो पहिले हमने ज्ञान किया था वह झूठ था, यह ठूठ पूरुय नहीं है, यह तो ठूठ है। तो यदि एक ठूठ है। तो यदि एक ठूठमें पुरुषका भ्रम हो गया और पुरुषका ज्ञान झुंड हो गया तो इसके मायने क्या यह है कि अपने गाँव घरके जितने भी मनुष्य हैं उनको भी झूठ कह दें? यह मनुष्य नहीं है, यह मनुष्य नहीं है क्योंकि हमने ठूठमें मनुष्य जाना था, वह झूठ था। एक जगह झूठा ज्ञान बन जाय तो इसका अर्थ यह नही है कि सब जगहका ज्ञान झूठा हो गया? स्वप्नमें वेखी हुई बात यदि झूठ है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि जागृत अवस्थाका, अच्छे दिमागकी हालतका भी ज्ञान झूठा हो गया। जैसे जिस ज्ञानमें कोई दूसरा बाधक ज्ञान न बन पाये तो वह सत्य है और जहाँ बाधक ज्ञान बन गया वह झूठ है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जैसे घूमते हुएमें ठूठको मनुष्य जान लिया। उस ज्ञानके बाद फिर यह ज्ञान बना कि यह मनुष्य नहीं है यह तो ठूठ ही है। तो यह झूठा ज्ञान कैसे हुआ ? यह तो सत्य ज्ञान हुआ। तो जिस ज्ञानमें दूसरे ज्ञानसे बाधा न आये, वह तो सत्यज्ञान है और जिस ज्ञानमें दूसरे ज्ञानसे बाधा आये वह असत्य ज्ञान है। यह सिद्धान्त आचार्यदेवने रखा है।

पूर्वपक्षकार द्वारा बाधकप्रत्ययके निराकरणका उपहास – अब बाधक ज्ञानकी मान्यताके प्रतिपक्षमें शङ्काकार द्वारा कुछ युक्तियाँ चलेंगी उन्हें ध्यानसे सुनना कि वह कैसी युक्ति देकर सही बातको भी झूठ साबित करना चाहता है। सिद्धान्त यह रखा गया है कि जिस ज्ञानके पश्चात् बाधक ज्ञान नहीं बनता वह तो सत्य है और जिस ज्ञानके पश्चात् बाधक ज्ञान बनता है वह असत्य है। शङ्काकार पूछ रहा है कि इस बाधक ज्ञानने हर क्या लिया ? जैसे एक दृष्टान्त रख लो किसी ठूठको कुछ अँधेरे उजेलेमें मनुष्य समझ लिया और बादमें कुछ उसके निकट जानेपर यह ज्ञान बना कि यह मनुष्य नहीं है, यह तो ठूठ है, तो यह जो दूसरा बाधक ज्ञान बना इसने वहाँ हर क्या लिया ? इस बाधक ज्ञानने ज्ञानका अपहरण तो किया नहीं क्योंकि वह ज्ञान तो प्रतिभात हो चुका। वह तो जब जाननेमें आया था तब आ गया था अब यह दूसरा ज्ञान है। अपहरण तो तब हो जब कुछ हो। वह तो पूर्व ज्ञान था, यह उत्तर ज्ञान बना। तो बाधकज्ञानने ज्ञानका अपहरण नहीं किया। फिर एक चुटकुलेमें शङ्काकार कहता है कि विषयापहार करना तो राजावोंका धर्म है और फिर अमूर्त ज्ञान विषयोंका कैसे अपहार करे। तो विषयका भी इस बाधक ज्ञानने अपहरण नहीं किया, और फलका भी ज्ञानने अपहरण नहीं किया। जैसे मरुस्थलमें दूर चमकती हुई रेतमें जलका भ्रम हो गया और कुछ उसके निकट जानेपर यह ख्याल बना कि यह जल नहीं है यह तो रेतीली जमीन है तो इस बाधक ज्ञानने फलका अपहरण क्या किया ?

पूर्वपक्षकार द्वारा पदार्थ या ज्ञानकी बाधकताका विकल्प—शंकाकार ही बाधक प्रत्ययके निराकरणमें एक दूसरी बात यह पूछ रहा हैं कि अच्छा अब यह बतलावो कि बाधक भी जो बना वह ज्ञान बना कि पदार्थ बना ? जो पहिले झूठा ज्ञान बना था ठूठमें कि यह पुरुष है तो वह बाधक ज्ञान बना कि पदार्थ बाधक बना ? वह ज्ञान बाधक होता होगा, क्यों जी पदार्थ तो बाधक होनेमें समर्थ नहीं हुआ करता है। जैसे पहिले जाना कि यह घट है और बादमें जाना कि यह कपड़ा है तो वह कपड़ा पदार्थ बाधक हुआ या ज्ञान बाधक हुआ ? पदार्थ बाधक नहीं हुआ, बाधक हुआ ज्ञान यदि पदार्थको बाधक मानोगे तो कोई व्यवस्था ही न बन पायेगी। हाँ यदि पदार्थ प्रतिभासमें आ गया तो बाधक हुआ और सत्यता उसने कायम करदी। तो प्रतिभात अर्थ तो अपने ज्ञानकी सत्यता ही बनाता है। यदि कहो कि बिना ही प्रतिभासमें आये हुए पदार्थ बाधक बन जाता तो यह तो परस्परमें बड़ा विरोध है। क्या जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थं नहीं है वह भी किसीका बाधक होता है ? जो असत् है, अप्रतिभात है वह तो किसीका बाधक बनना ही नहीं। इस कारण बाधक ज्ञान कुछ चीज नहीं।

शंकाकार द्वारा क्षेत्र काल व जीवोंके आश्रय बाध्यबाधक भावका विकल्प—अब फिर और पूछा जा रहा है शङ्काकार द्वारा ही जरा कि यह तो बतवो कि किसी समय किसी जगह किसी आदमीका बाध्यबाधक भाव बननेसे ज्ञानकी सत्यासत्यताकी व्यवस्था बनती है या सब जगह सब जीवोंमें बाध्यबाधक भाव बननेसे व्यवस्था बनती है। इसमें दो विकल्प रखे यदि कहो कि कभी कहीं किसीके बाध्य-बाधक ज्ञानसे सत्यासत्यताका परिचय हो जायगा तो यह व्यभिचारी और बात है। किसीको कभी कहीं बाध्य बाधकताका ज्ञान हो और किसीको सत्यासत्यताका निर्णय हो या उसे ही अन्यत्र अन्यदा निर्णय हो यह तो पोची बात है इस हेतुसे तो मिथ्या-ज्ञानमें भी प्रमाणता हो बैठेगी। यदि कहो कि सर्वदा सर्वत्र सबको बाध्यबाधक भाव का अब बोध होनेपर सत्यासत्यताका निर्णय होता है तो यह तो बिल्कुल ही कठिन बात है। यह तो होता भी नहीं कि सर्वदा सर्वत्र सबको बाध्यबाधक भावका निर्णय हो कदाचित् मान भी लो कि ऐसा हो भी गया तो हम आप कोई छद्मस्था तो निर्णय कर ही नहीं सकता कि सर्वत्र सर्वदा सबको बाध्यबाधक ज्ञानका निश्चय हो गया है। कोई जान ले तो वह वीतराग सर्वज्ञ होगा उसे निर्णयका विकल्प करनेकी आवश्यकता क्या है। यथार्थ बात तो यह है कि ज्ञानमें प्रमाणता अपने स्वपरव्यवसायित्व स्वरूपके कारण है।

ज्ञानकी बाध्यबाधकताकी असिद्धिका शङ्काकार द्वारा प्रयत्न—यह सिद्धान्त रखा गया था कि जिस ज्ञानपर बाधक ज्ञान बने वह ज्ञान तो असत्य है और जिस ज्ञानपर बाधक ज्ञान न आये उस ज्ञानको सत्य ज्ञान कहते हैं। जैसे सीपको चाँदी जाना, इसके बाद परीक्षा करने से जो कुछ और विशेष निर्णयरूपसे ज्ञान होता है कि यह तो सीप है, चाँदी नहीं है। तो पहिले जो ज्ञान हुआ था उस ज्ञानमें बाधा आ गयी अब। द्वितीय ज्ञान बाधक बना और प्रथम ज्ञान बाध्य हुआ। वह ज्ञान असत्य हुआ। जो बाधक ज्ञान बना वह सत्य है। जैसे जितने मनुष्योंको निरखते हैं उनमेंसे किसीको पहिले जाना कि यह फलाने हैं और बादमें जाना कि यह फलाने नहीं हैं तो यह सत्य ज्ञान है। इसपर शङ्काकारने कुछ विकल्प बनाकर उसको बिगाड़नेका प्रयास किया कि बाधक ज्ञान के द्वारा हरा क्या जाता है ? ज्ञान विषय अथवा फल ? और इसके अतिरिक्त यह बात रख रहा है कि सब जगह सब पुरुषोंको बाधक ज्ञान बने तब पूर्व ज्ञान सत्य कहलायेगा या किसी पुरुषको किसी समय बाधक ज्ञान बने तो सत्य कहलायेगा। जैसे सीपको चाँदी जाना तो एक दो पुरुषोंका ही बाधक ज्ञान बन् कि यह चाँदी नहीं है सीप ही है। क्या इतने मात्रसे सत्यकी व्यवस्था होगी या उस पूरेमें सब देशके लोग सब समय सभी लोग उसे जान जायें कि यह चाँदी नहीं है, सीप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है ऐसा बाधक ज्ञान बने तो असत्य है। दो प्रश्न रखे गए थे। कभी किसी समय किसी के बाधक ज्ञान बनानेकी व्यवस्था करोगे तो किसीके बाधक ज्ञान बनता है किसीके नहीं बनता तो इसमें सत्य और असत्यकी व्यवस्थाका मिश्रण हो जायगा और यदि सब लोग उसमें बाधक बनें तब सत्यकी व्यवस्था हो तो यह तो यहाँ असम्भव है कि सब लोग जान जायें कि यह चाँदी नहीं है सीप है जब हमारा ज्ञान मिथ्या कहलाया तो यह तो असम्भव है। और, जो जान गया वह सर्वज्ञ है, उसका यहाँ व्यवहार नहीं अतएव बाधक ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती।

बाध्यबाधक ज्ञानकी असिद्धिके पक्षके समाधानमें विषयकी एकता व भिन्नताका विवरण—शङ्काकारने बाध्य बाधक ज्ञानकी असिद्धिके लिये अपना पक्ष रखा था। उसके उत्तरमें आचार्यदेव कहते हैं कि इतने विकल्प उठाये वह सब गहन अंधकारका बिलास है। एक सच बातको तोड़नेके लिए बाधा उठाई गई है। वहाँ भी किसीकी बातका तोड़ मरोड़ करना हो तो उसमें कई प्रश्न कर डालें, यह उपाय है। तो विकल्पोंसे एक उलझन पैदा कर दी जाती है। यह विकल्पोंकी उलझन डालना गहन अज्ञानका फल है, क्योंकि स्पष्ट सबको अनुभव होता है कि जो सीपको चाँदीका ज्ञान किया था उसके बाद फिर सीपके रूपसे जो ज्ञान बनता है वह उसको ही विषय कर रहा है और वह रजत ज्ञान बाध्य हो गया, और यह जो सीप है ऐसा उत्तर ज्ञान बना वह बाधक बन गया। विषय एक ही रहा प्रत्यक्षमें आंखोंसे दिखने वाली वस्तुके ही बारेमें पहिले विपर्ययज्ञान हुआ था और उस ही वस्तुके बारेमें अब सत्यज्ञान बना है तो इसमें बाध्य बाधकपनेके जो विकल्प बने वे सब तुम्हारे वितंडावाद हैं। ज्ञान ही ऐसा बना जो पूर्वमें जाना है उसके विपरीत अर्थको बतावे तो विपरीतसे विपरीतको बतादे उसीके मायने है बाधक ज्ञान। कुछ पहिले जाना था उल्टा अब उससे भी उल्टा जान ले ऐसा ज्ञान बने तो उसे कहते हैं बाधक ज्ञान और पूर्वज्ञानमें जो इस बातका प्रतिपादन बना कि यह था असत् था इसीके मायने हुआ बाध्यज्ञान। तो यों भेद है, सब पदार्थ न्यारे-न्यारे है। ऐसा नहीं है कि जगतमें कोई एक ही ब्रह्मतत्त्व है और ये पदार्थ कुछ भी नहीं हैं यह बात कुछ नहीं है। सर्व पदार्थ उन सब पदार्थोंमें हम एक साधारण धर्म देखकर अभेदका ज्ञान कर लेते हैं और जब स्वरूपका अवधारण करते, सबके स्वरूपका निश्चय बनाते तो सब भिन्न-भिन्न ज्ञान होते ही हैं।

बाध्यबाधकपनेकी संभवता व प्रयोजन—अब शङ्काकार यह कह रहा है कि जो पहिले सीपको चांदी जाना था और उसके बाद यह ज्ञान बना कि यह चाँदी नहीं है, यह तो सीप है तो यहाँ जो पहिले चांदीका ज्ञान हो गया था वह तो उत्पन्न हो गया। जो उत्पन्न होकर अपना काम कर गया, नष्ट हो गया, अब जो ज्ञान उत्पन्न होकर नष्ट हो गया उसके बारेमें फिर बाधक बाध्य ज्ञान कहना यह तो ऐसा है कि जैसे साँप निकल गया और लकीर पीट रहे हैं। जो ज्ञान पहिले हो गया था वह होकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नष्ट हो गया। अब दूसरा ज्ञान चल रहा है तो अब इस ज्ञानने उस ज्ञानमें बाधा डालना एक सांपकी पीटनेकी तरह है। अब जो ज्ञान गुजर गया उसको मिथ्या कह देना इससे क्या फायदा है ? इसपर उत्तर देते हैं कि भाई फायदा क्या है, जो ज्ञान गुजर गया उसे मिथ्या ज्ञानको मिथ्या बता देना यह बाध्यपना है और आत्मलाभ यह है कि फिर यथार्थ प्रवृत्ति बनेगी, विरुद्ध प्रवृत्ति न बनेगी। सीपको चाँदी जान लिया था और अब जान गए सीप तो वहाँ भिड़ना तो न पड़ेगा, दौड़ना तो न पड़ेगा, तो फायदा भी है। मिथ्याज्ञान मिथ्या है यह ऐसा बोध हो जानेमें लाभ है और यह बाध्यपना है कि उसको मिथ्याज्ञान कह दिया।

बाध्यबाधकता की असिद्धिमें अविद्या और विद्याकी सिद्धिकी असंभवता – शङ्काकारका यह प्रयोजन था कि जो ज्ञान गुजर गया अब उस ज्ञानमें बाध्यपनाकी बात क्यों बताते ? तो उत्तरमें यह कह रहे कि बाध्यपना इतना ही तो है कि उस ज्ञानने यह साबित कर दिया कि यह झूठा है। कोई लाठी मारनेकी बाधा ज्ञानको नहीं दे रहा है और फिर जब तुम बाधक ज्ञानका स्वरूप ही नहीं बनने देते तो तुम अपनी अविद्या और विद्यामें बाध्यबाधकपना कैसे सिद्ध करोगे ? तत्त्वज्ञान बन गया तो भ्रम न होगा। भ्रमज्ञान बाध्य है और तत्त्वज्ञान बाधक है। तो बाध्य बाधक का स्वरूप तो कुछ भी मानते हो वहाँ भी ये सब विकल्प लग जायेंगे कि बाधकके द्वारा ज्ञानका या विषयका या फलका अपहरण हुआ। तत्त्वज्ञान बाधक है और अविद्या ज्ञान बाध्य है, उनकी कैसे व्यवस्था बनेगी ? इसमें बाधक ज्ञान होता है, उससे पहिले ज्ञानमें बाधा डाल ली जाती है, तब सत्य असत्यका निर्णय होता है, और यह बात भिन्न–भिन्न पदार्थोंके माननेपर ही बन सकती है। केवल एक अद्वैतमात्रमें काहेका बाध्य और काहेकी बाधकता ?

भेदसमारोपमें भी मौलिक तथ्य—शङ्काकारने जो यह कहा था कि तत्त्व तो वास्तवमें एक अभेद ब्रह्म है और फिर ये जो भेद जाने जा रहे हैं ये वैसे ही कल्पनाएँ कर डालनेसे भेद बन गए हैं। जैसे गोटोंमें सब काठकी गोट होती हैं, उसमें यदि यह कल्पना करें कि यह हाथी है, यह ऊँट है, यह वजीर है तो ये कल्पनाएँ तो समारोपित हैं। कोई है भी क्या ? तो ऐसा तत्त्व अभेदरूप है और उसमें जो भेद बनाया वे सब कल्पनाएँ हैं। यह जो तुमने कहा वह अयुक्त है क्योंकि समारोपित भी भेद तब ही बन सकता है जब पदार्थ न्यारे–न्यारे जुदा–जुदा हों। निरंश आत्मा हो अथवा अन्य बाहरमें कोई वस्तु सी प्रसिद्ध नहीं है तो उसमें भेद कल्पना भी नहीं बनती इस कारण आत्माके अद्वैतके सिद्धान्तको तजकर तुम यह मान लो कि अन्तरङ्गमें भी यह मैं आत्मा हूँ और बाहर में भी ये सब पदार्थ हैं। यह प्रमाण प्रसिद्ध बात है। यहाँ यह बात सिद्ध की गई कि आत्मा भी सब हैं और वे अनन्त हैं और इसके अतिरिक्त अजीव पदार्थ भी ये सब हैं और वे भी अनन्त हैं। केवल एक ही आत्मतत्त्व हो, ब्रह्म-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मात्र हो और ये सब असत्य हो यह बात सिद्ध नहीं होती। इसी कारण प्रमाणका जो स्वरूप कहा गया है कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय करे वह ज्ञान प्रमाण होता है यह स्वरूपयुक्त है। अपूर्व अर्थ दुनियामें अनेक हैं और जब हम किसी नवीन मर्मका परिचय करते हैं तो हमारा वह विज्ञान प्रमाणभूत है। यह सब बात स्याद्वाद से सिद्ध होती है।

निर्णयका साधन स्याद्वाद—जैन सिद्धान्तमें सबसे अधिक प्रमुख बात तो यह है कि संसारके सङ्कटोंसे छूटकर मुक्तिमें पहुँचनेका सही मार्ग बताना और इसकी व्यवस्था बनती है स्याद्वादसे। जब तक वस्तुका यथार्थ स्वरूप ज्ञानमें न आये तब तक हम सन्तोषसे, शान्तिसे निर्णय किए हुएकी स्थितिमें जो सत्य विश्राम मिलता है उस ढङ्गसे अपनी वृत्ति नहीं कर सकते। सत्य ज्ञानसे ही मुक्तिका मार्ग मिलता है और वह ज्ञात होता है स्याद्वादसे। देखिये ! कुछ भी बात कहो उसमें स्याद्वाद पड़ा हुआ है और कुछ भी कहो उसमें ७ भंग रहा करते हैं। चाहे कोई उन्हें समझे या बिकल्पमें भी न लाये मगर उसमें ७ भङ्ग तक हो सकते हैं।

किसीके भी ज्ञानमें सप्तसङ्गका समावेश—भैया ! कुछ भी नाम धरो उसमें ७ तरंग आते हैं। जैसे यह ही कह दिया कि यह घड़ी है इस घड़ीको देखकर कहा कि यह है। यह है, ऐसा स्पष्ट बोल दिया पर इसमें यह बात भी समाई है कि यह चौकी, दरी आदिक और कुछ नहीं है। तो दो भंग हो गए—यह घड़ी है एक और घड़ीके अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ नहीं है दो। यदि इन दो मेंसे किसी एकको न माने तो बाकीका एक भी न रहेगा। जैसे कोई कहे कि हम एक बात तो मान लेंगे कि यह घड़ी है पर यह न मानेंगे कि घड़ी के सिवाय अन्य पदार्थ नहीं है यह। तो इसका अर्थ क्या निकला ? कुछ भी बात कहो उसमें कहनेके साथ ही दो तरङ्ग आ जाते हैं। फिर इसके बाद इन दो तरङ्गोंको हम एक साथ कह नहीं सकते बता नहीं इसलिये तीसरी तरङ्ग आयगी अवक्तव्यकी। भाई ! तुम कहते हो कि यह घड़ी है, फिर कहते हो कि घड़ीके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। जरा एक शब्द में एक बारमें एक ही दफे तुम पूरी बात तो बता दो क्या है ? तो वह नहीं कहा जा सकता इसलिए तीसरी तरंग अवक्तव्य भी आ ही पड़ी। अब तीन बातें स्वतंत्र हो गयी। यह घड़ी है यह अघड़ी नहीं है और अवक्तव्य है जब तीन स्वतंत्र हो गए तो तीनके सन्निपायमें चार भेद और हो जाया करते हैं। कुछ भी तीन चीजें रख लो उनका सन्निपात संयोग सम्बन्ध बन जायगा तो ४ संयोग बनेंगे। जैसे खानेकी कोई तीन वस्तुवें हैं—साग, पूड़ी और पापड़। अब इनका अकेले अकेले भी स्वाद लिया जायगा तो तीन तो स्वतंत्र स्वाद हैं। संयोग उसके चार बनेंगे साग पूड़ी- साग पापड़, पूड़ी पापड़, दो दो मिलाकर खाये यों तीन तरहसे। तीनोंको मिला ले तो वह भी एक संयोग बना। तीन स्वतंत्र पदार्थ हों तो उनके ४ संयोग बनते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भंगोंका करणबीज—ऐसे ही यदि मान लो चार पदार्थ हैं स्वतंत्र तो उसके १५ स्वाद बनेंगे। और, इसका नियम यह है कि जितने स्वतंत्र पदार्थ हुए उतने बार दो दो रख दो। ४ स्वतंत्र चीजें हैं तो चार बार दो दो रख दो उनका परस्परमें गुणा कर लो तो २ × २ × २ × २ = १६ और इसमेंसे १ घटा दो। यों १५ स्वाद बनेंगे। तुम्हें ८ का स्वाद जानना है, ८ पदार्थ हैं। ८ बार दो दो रख दो, उनका परस्परमें गुणा करके जो कुछ आये उनमेंसे एक घटा दो यों उतनी प्रकारके भंग हो जायेंगे। जब यहाँ मूलमें तीन भंग हैं तो तीन बार दो दो का गुणा हुआ २ × २ × २ = ८ और इनमेंसे एक कम हो गया तो ७ रह गए। कुछ भी आप शब्द बोलो कहीं भी लौकिक पारमार्थिक बोलनेके साथ ही उसमें ७ भंग आ जाते हैं। सप्तभंगी स्याद्वाद ऐसे प्रत्येक बोलनेके साथ जुड़े होते हैं। यह खोज जैन सिद्धान्तमें मिलती है। फिर इस स्याद्वाद के सहारे वस्तुवोंका निर्णय बनाते जाइये। पदार्थ है, है के साथ ही उसमें ७ भंग होते हैं।

नित्यत्वके कथनमें सात भंग– पदार्थ सदा रहते हैं या क्षण क्षणमें नष्ट होते हैं ऐसे विकल्पोंके बीच किसीने एक कोई तत्त्व रख दिया। पदार्थ नित्य है तो उसके साथ अनित्यपना भी जुड़ा है। पदार्थ यदि द्रव्यदृष्टिसे नित्य है तो परिणमन दृष्टिसे अनित्य है। यह जीव सदा रहता है तो क्या यह जीव मिट जाय ऐसा नहीं होता ? पर्यायमें होता है। आज जो मनुष्य है, मिटकर देव बन गया तो तब वह जीव नहीं रहा ऐसा लोग भी कहते हैं। और लोग तो एक ही जीवनमें कह डालते हैं। जिससे आपकी कल तक मित्रता रही आज अभी थोड़ी देर पहिले कोई विसम्वाद खड़ा हो गया, विवाद बढ़ गया, कुछ कपट भी नजर आने लगा तो आप ही यह कह देते कि अब वह नहीं रहा जो पहिले था। लो ऐसी बदल तो जीवनमें भी लोग समझते रहते हैं। तो पर्यायदृष्टिसे पदार्थ अनित्य है, द्रव्यदृष्टिसे पदार्थ नित्य है। सब एक साथ नहीं कहा जा सकता बस कारण अवक्तव्य है। यों तीन स्वतंत्र भंग होनेपर चार संयोग भंग और आ जाते हैं।

स्याद्वादसे विसंवादका भी समाधान– अभी तो भंगोंकी बात कही। अब जीव जीवमें विसम्वादोंमें निर्णयकी बात देखिये। स्याद्वादी कैसा झट सही निर्णय कर देता है। यह पूछा किसीने कि इस घोड़ेका रंग सपेद है ना, तो यह सपेद रंग घोड़ेसे भिन्न है कि अभिन्न है ? विकल्प ऐसी चीज है कि यथार्थ भान न हो तो सच्ची बात में भी उलझन बना देता है। घोड़ेका यह सफेद रंग घोड़ेसे जुदा है कि एकमेक है ? यदि जुदा है तो फिर वह घोड़ा रंगरहित रह गया, फिर उस घोड़ेका क्या स्वरूप ? यह एकमेक है तो चाहे सफेद कह दो चाहे घोड़ा कह दो दोनोंका एक अर्थ होना चाहिए। अब इसका निर्णय बनायें। स्याद्वादी निर्णय बनाता है कि यह घोड़ेका सफेद रंग घोड़ेसे कथंचित् भिन्न है कथंचित् अभिन्न है। अभिन्न तो यों है कि सफेद रंग यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस घोड़ेका व्यक्त लक्षण है। लक्षण भावसे तो अभिन्नता है और घोड़ा पिण्ड चिरकाल तक रहेगा पर यह सफेदी आज है कल कहो न रहे इस कारण वह सफेदी घोड़े से भिन्न है। किन्तु, रूपशून्य कोई पुद्गल होता नहीं। और, जिस कालमें घोड़ामें सफेद रूप है उस कालमें यह रूप घोड़ेसे अभिन्न है।

विकल्पोंके उलझनकी जिज्ञासा और समाधान – यों विकल्प करके तो कुछ भी गड़बड़ी डाल सकते हैं। किसीसे पूछा जाय—हों पिता पुत्र दोनों और उनसे कहा जाय कि क्या यह तुम्हारा पिता ही है? अगर कहे कि हाँ यह हमारा पिता ही है, तो यह विकल्प करने लगे कि भूतकालमें भी सदासे पिता ही रहा, भविष्यकालमें भी क्या सदा पिता ही रहेगा? अनादिकालसे तुम हो तो क्या तभीसे यह तुम्हारा पिता है? और, कहे कि पिता नहीं है तो वह भी बड़ी कठिन बात है। विकल्प ऐसा खतरनाक प्रकरण है कि सच बातमें भी कहो एक बड़ी उलझन डाल दे। कोई पूछता है कि भाई आप कहाँसे आये? और, वह जवाब दे कि हमें तो पता नहीं कि कहाँसे आये तो यह उसका जवाब क्या गलत है? वह तो सही है। वह इस दृष्टिसे कह रहा है कि न जाने पहिले हम किस गतिमें थे, मनुष्य थे कि पशु पक्षी थे कि कीड़ा मकोड़ा थे, क्या पता कहाँसे आये। दृष्टियाँ तो सब न्यारी–न्यारी होती हैं। और, व्यवहार भी चलता रहे तब दृष्टियोंके भेदसे निर्णय बनना यह बात तो युक्ति सङ्गत है। तो सर्व पदार्थोंके स्वरूपमें स्याद्वादसे निर्णय सही बनता है।

स्याद्वादसे पारगत पारमार्थिक तत्त्व—परमार्थकी बात इससे भी और उँची है, स्याद्वाद द्वारा निर्णय कर दिया जानेसे भी ऊँची है, किन्तु भावका ज्ञान व आदर किये बिना उसका लाभ नहीं मिलता। जैसे किसीने कहा भाई – इस घोड़ेको पानी दिखा लेना, वह घोड़ेको पानीके निकट ले जाय और कहे कि ऐ घोड़े! देख ले वह पानी और फिर लौट चल तो यह तो एक व्यर्थ सी बात हो गयी। ऐसे ही स्याद्वादके द्वारा निर्णय तो हम कर लेते हैं कि कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है, पर इस निर्णयका फल क्या है? इस निर्णयका फल है कि सर्व विकल्प तोड़कर निर्विकल्प ज्ञानस्वरूपका अनुभव कर लेना। यह बात न बने तो हमारे इस निर्णयसे भी अभी लाभ नहीं हुआ। लेकिन फिर भी भला यों है वह निर्णय कि जैसे कोई कंजूस धनी है तो उस कंजूस धनीसे फायदा कुछ नहीं है। न घर वाले सुखसे रह पाते और न प्रजा के लोगोंको कुछ लाभ होता, लेकिन है कंजूस अभी, पर धन तो है पास। कभी बात बदल जाय, मनमें आ जाय, उदारता जग जाय तो अपना और दूसरोंका भला तो कर सकेगा। ऐसे ही स्याद्वादके द्वारा जो वस्तुस्वरूपका निर्णय होता है उस निर्णयके बाद यदि निर्विकल्प समाधिका आनन्द न लिया जा सका तब भी भला इतना है कि उस निर्विकल्प समाधिका आनन्द पानेका मूल तो प्राप्त है। जब कभी स्वसम्मुखता बनेगी तो निर्विकल्प ज्ञानानुभूति की जा सकेगी।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमार्थकी अनेकान्तता—इसी सिलसिलेमें आप अनेकान्तका अर्थ कर लीजिए। अनेक अन्त। अन्त नाम है धर्मका। पदार्थ अनेक धर्मान्तिक हैं, नित्य भी हैं, अनित्य भी हैं, एक हैं, अनेक है यों अनन्तधर्मात्मक पदार्थ हैं ऐसा निर्णय करनेका नाम हुआ अनेकान्तका ज्ञान। और इसके फलमें क्या मिलेगा ? उस फलको जाननेके लिए अनेकान्तका दूसरा अर्थ कर लीजिए। न एक अन्त। 'न एक" शब्दसे अनेक बनता है। उसका अर्थ कीजिए कि जहाँ एक भी धर्म नहीं है ऐसा अनुभव। जिस निर्विकल्प ज्ञानानुभवकी स्थितिमें एक भी विकल्प नहीं रहते उसे कहते हैं अनेकान्तका अनुभव। तो यह सब तत्त्वज्ञान इस लिए हैं कि संसारके प्राणी अनादिकालसे अविद्या के कारण भ्रमवश पर्यायबुद्धि होकर जन्म मरण करते जा रहे हैं, दुःखी हो रहे हैं। यह मैं क्या हूं वास्तवमें इसका तो परिचय करते नहीं और शरीर आदिक जो कुछ मिला है इस ही पर्यायमें अपनी आत्मबुद्धि लगाया तो उसका यह फल निकलता, निमित्त नैमित्तिक भावसे यह बनता कि कर्मबन्ध होता फिर इस भवका मरण होता, दूसरे भवमें उत्पाद होता। और, जब शरीर है तो शरीरके आश्रयसे क्षुधा, तृष्णा, सम्मान अपमान अनेक-अनेक प्रकारके क्लेश लग जाया करते हैं। इन सब क्लेशोंसे छूटनेका काम हम आप सबको मुख्य पड़ा है। केवल इस भवकी व्यवस्था बननेसे काम न चलेगा। अच्छा मकान, अच्छी दूकान, अच्छा परिवार आदि बना लिया, चार आदमी आदर करने लगे, इतनेसे ही काम न बनेगा। ये सब स्वप्नवत् बातें हैं। मर गये, आगे क्या बीतेगी। जो जैसा परिणाम किया और उस परिणामके अनुकूल जैसे कुछ कर्म बँधे हों उनका फल नजर आयगा। यदि इस जीवनके सुख सातामें ही चैन मान लिया तो यह बात ठीक नहीं है।

आत्मनिर्णयमें भलाई—अपने आपका निर्णय करना बहुत आवश्यक है। यदि अपने इस ज्ञानस्वरूप सहजभावमें यह मैं हूं ऐसी प्रतीति बने और इसके ही निकट अपने ज्ञानको बिठलाये रहे तो उसमें कर्मबन्ध रुकेगा, विकल्पजाल समाप्त होगा, और जन्म मरणकी परम्परा भङ्ग हो जायगी, तो इस संसारसे छूटनेका काम सबसे बड़ा पड़ा हुआ है। जरा-जरासे विषय कषायकी भावनाओंसे प्रेरित होकर यहाँके इन दृश्यमान पदार्थोंमें कुछ पकड़नेकी हठ बनाना यह तो निःसार बात है। हाँ एक जीवन निर्वाहके लिये कुछ न कुछ करना वह तो बात ठीक है, पर व्यर्थमें पर पदार्थोंके पीछे दौड़ लगाना यह तो कोई बुद्धिमानीकी बात नहीं है। एक आत्मध्यान ही करना योग्य है। इस आत्मध्यानके द्वारा ही संसारके आवागमनसे छुटकारा मिल सकेगा। इस ही प्रयोजनके लिए दार्शनिकोंने अपने-अपने मंतव्य रखे हैं और उन सब मंतव्योंका इसी कारण विचार चल रहा है कि मेरा सत्य आशय क्या बनना चाहिए जिससे हम इन संसारके संकटोंसे शीघ्र छुटकारा पा सकें।

मात्र अद्वैतकी असाध्यता—लोकमें तत्त्व क्या है जिसका कि ज्ञान प्रमाण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माना जाय, इस प्रसङ्गमें सिद्धान्त तो यह रखा गया था कि लोकमें तत्त्व अथवा पदार्थ अनन्त हैं और उनमें एक स्व है और अनन्त पर हैं। जो भी जानने वाला है उसके जाननेमें कितने पदार्थ आ सकते हैं उसे इन दो विभागोंमें बांट लेना चाहिए स्व और पर। स्व तो सबके लिए एक एक ही होता है और पर अनन्तानन्त होते हैं। उन सबका निर्णय करने वाला ज्ञान प्रमाण है। इस प्रसंगमें अभी ब्रह्माद्वैतका सिद्धान्त आया था कि तत्त्व तो केवल एक ब्रह्म मात्र है और उसकी मीमांसतामें यह विचार प्रतीत किया था कि केवल एक ही अद्वैत कुछ हो, ऐसा नहीं है किन्तु अनन्तानन्त पदार्थ हैं उस अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण है।

ज्ञानाद्वैतवादका एक मन्तव्य--ब्रह्माद्वैतवादीके पश्चात् ज्ञानाद्वैतवादी कह रहे हैं कि बुद्धिके सिवाय जिसमें कुछ जाननेवाले हैं व कुछ जाने गते हैं इस प्रकारका भी विभाग न होनेसे केवल बुद्धि ही प्रतीत होती है, बुद्धिसे अतिरिक्त अन्य पदार्थ हैं ही नहीं। अतः केवल एक विज्ञानमात्र तत्त्व मानना चाहिए। और, उस विज्ञानमात्र का ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण होना चाहिए। ऐसा यहाँ अद्वैतवादने अपना पक्ष रखा। इस प्रसङ्गमें इतना और जान लें कि ब्रह्मवाद और ज्ञानवादमें अन्तर क्या है? ब्रह्माद्वैतवादमें तो कोई वस्तु माना, प्रतिभास तत्त्व माना, आत्मा माना है और उसे सर्वव्यापक और एक ही माना है। यहां ज्ञानाद्वैतवादमें आत्मा माना किन्तु एक ज्ञानमात्र ज्ञानभाव जानकारीमात्र और फिर उसका अद्वैत किया गया। यद्यपि यह विज्ञानवाद क्षणिकवादका ही भेद है, किन्तु इतना अन्तर है यहाँ कि क्षणिकवादके एक प्रमुखभेदमें तो पदार्थ नाना माने जाते हैं और यहाँ तक नाना माने जाते कि रूप, रस, गंध, स्पर्श सब कुछ न्यारी-न्यारी चीजें हैं और वे क्षणमात्रको ठहरती हैं। विज्ञानद्वैतवादमें क्षणिकपना तो माना है कि प्रत्येक ज्ञानमात्र तत्त्व क्षणभरमें आता है पश्चात् असत् हो जाता है, लेकिन ज्ञानके सिवाय अन्य पदार्थोंको नहीं माना। तो ज्ञानाद्वैतने धर्मका अद्वैत किया और ब्रह्माद्वैतने धर्मीका अद्वैत किया। यों अन्तर समझिये, जैसे कि आत्मा और ज्ञान। आत्मा तो गुणपर्यायात्मक एक वस्तु है धर्मी है और ज्ञानदर्शन आदिक गुणोंकी भाँति एक धर्म है। तो ज्ञान धर्मका अद्वैत किया गया और उस ज्ञानको भी क्षणिक माना। तो ज्ञानाद्वैतवादमें यह बताया जा रहा कि ग्राह्य और ग्राहक भेदके बिना ही ज्ञानस्वरूप तो प्रतीत होता है, उसे छोड़कर और पदार्थ सदभूत नहीं है इस कारण एक विज्ञप्तिमात्र ही तत्त्व है।

विज्ञप्तिमात्रके साधक हेतुका अभाव विज्ञानाद्वैतताके समाधानमें आचार्यदेव कहते हैं कि तुम ज्ञानमात्र तत्त्व मानते हो तो क्या इस कारण मानते हो कि निर्विभाग बुद्धिस्वरूपका ज्ञान कराने वाला कोई प्रमाण है अथवा बाहरी पदार्थों के सद्भावमें बाधा देने वाला कोई प्रमाण है अर्थात् पदार्थोंका अभेद सिद्ध करके क्या तुम ज्ञानमात्र तत्त्व मानते हो अथवा ज्ञानमात्र तत्त्वका साधक कोई प्रमाण है इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण तुम ज्ञानमात्र तत्त्व मानते हो। यदि यह कहोगे कि निर्विभाग ज्ञान स्वरूपको सिद्ध करने वाला प्रमाण है इस कारण विज्ञप्तिमात्र तत्त्व है; तो पूछते हैं कि निर्विभाग जानकारीको बताने वाला जो विज्ञप्तिमात्र तत्त्व है उसका ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष प्रमाण है या अनुमान। अर्थात् क्या तुम प्रत्यक्षसे जान लेते हो कि केवल ज्ञान मात्र तत्त्व है अथवा तुम अनुमानसे जानते हो कि केवल ज्ञानमात्र तत्त्व है। दो प्रमाण के अतिरिक्त और कोई प्रमाण ज्ञानाद्वैतवादमें, क्षणिकवादमें नहीं माना गया है।

विज्ञप्तिमात्रकी प्रत्यक्षसे असिद्धि - क्या प्रत्यक्षसे स्वरूप सिद्ध करोगे कि केवल ज्ञानमात्र तत्त्व है। यदि प्रत्यक्षसे सिद्ध करना चाहो तो यह बात तो बिल्कुल अयुक्त है क्योंकि बाहरी पदार्थकी कुछ झलक ही नहीं आयी; उसका रंच भी संस्पर्श नहीं हुआ, केवल विज्ञप्तिमात्र है तत्त्व ऐसा जान जाय प्रत्यक्ष ऐसा किसीको नहीं होता सभी लोग प्रत्यक्षसे पदार्थोंका सद्भाव ज्ञात किया करते हैं। फिर दूसरी बात यह है कि पदार्थोंका अभाव है, अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है ऐसा निश्चय किए बिना ज्ञान मात्र तत्त्व है यह निर्णय नहीं बनाया जा सकता। तुम्हें यह सिद्ध करना होगा कि पदार्थोंका अभाव क्या प्रत्यक्षसे जाना जायगा अथवा अनुमानसे जाना जायगा। प्रत्यक्ष से तो जाना नहीं जाता। प्रत्यक्ष पदार्थोंके अभावको नहीं जानता बल्कि पदार्थोंके सद्-भावको जानता है। प्रत्यक्षके बाह्य अर्थकी प्रकाशकरूपसे ही परिणति होती है। प्रत्यक्ष ज्ञान बाहरी पदार्थोंको बराबर जानता है और प्रत्यक्षमें जो बात आयी है, जिस पदार्थका प्रतिभास हुआ है उस पदार्थका तुम अभाव नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्षमें आये हुए इस पदार्थका भी यदि अभाव मान लिया जाय तो ज्ञानमात्र तत्त्वका भी अभाव मान लो। भले ही ज्ञानमें आ जाय पर ज्ञानमें आयी हुई चीजका भी अभाव माना जाने लगा तो ज्ञानमात्र तत्त्वका भी अभाव हो जायगा। यहाँ पूर्व पक्ष तो यह है कि केवल ज्ञान ही तत्त्व है और पुद्गल है जीव है, और और पदार्थ हैं, ये कुछ नहीं हैं ऐसा शंकाकारका पक्ष है। और, उत्तरमें यह सिद्ध किया जा रहा है कि नहीं ज्ञान तो एक गुण है, ज्ञानवान आत्मा है और ज्ञानरहित भी अनन्य पदार्थ हैं, और उन उन ज्ञानी और ज्ञानरहित समस्त पदार्थोंका जो भी ज्ञान होता है यदि उसमें सम्वाद है उसमें बाधकज्ञान नहीं बनता, संशय, विपर्यय, और अनध्यवसाय नहीं हो तो वह ज्ञान प्रमाणभूत है। तो अर्थका अभाव प्रत्यक्षसे तो नहीं जाना।

विज्ञप्तिमात्रकी सिद्धिमें दिये गये दृष्टान्त व साधनोंसे द्वैतकी सिद्धि— यदि यह कहो कि जैसे आँखमें कोई दोष कांच कमल आदिक हो तो उसे दो चन्द्रमा ज्ञानमें आते हैं। तो जैसे चन्द्र दो तो नहीं हैं, पर प्रतिभासमें आनेपर तो प्रतिभासमें आनेपर भी ये सब पदार्थ झूठ हैं। दो चन्द्र नहीं हैं, इसी तरह निर्मल भी मन हो उससे भी जो प्रतिभास होगा वह भी असत् हो जायगा, यह बात तो नहीं बनती। दोषीक इन्द्रियाँ हैं, तो उनसे मिथ्याज्ञान बनेगा। निर्दोष इन्द्रियाँ हैं, निर्दोष मन है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो उससे मिथ्याज्ञान नहीं बनता। एक जगह यदि यह बात झूठ हो गयी तो सब जगहकी सच सच बात भी झूठ हो जाय यह कौन बुद्धिमान मानेगा ? जो आँखोंमें रोग था उसके कारण दो चन्द्रमा दिखते थे, तो दूसरोंके द्वारा या खुद भी अच्छी निगाह करके देखता है तो उसको यह ज्ञान बनता कि चन्द्र एक ही है। तो दो चन्द्र के ज्ञानमें बाधक ज्ञान बना दूसरा अतएव वह मिथ्या है, मगर जो सत्य प्रतिभासका बाधक है ये समस्त पदार्थ जो प्रत्ययमें आते हैं, निर्मल मन और निर्मल इन्द्रियके द्वारा जो पदार्थ ज्ञात होते हैं वे अबाध्यमान प्रत्ययके विषय हैं। ठीक सही सही जानते जा रहे, यह चौकी है, यह अमुक है यह पुद्गल है यह जीव है, इससे कोई बाधक ज्ञान नहीं बनता। जैसे कि दो चन्द्र दिख गये अथवा सीपको चाँदी जान गए तो वहाँ दूसरा बाधक ज्ञान होता है, यह ज्ञान सही नहीं है। बात असलमें यह है। तो इस सत्य प्रतिभासमें कोई बाधक ज्ञान भी दूसरा नहीं आता अतएव इसका तो सत्त्व है। इस कारण अर्थका अभाव प्रत्यक्षसे जाना जाता, यह कथन तुम्हारा युक्त नहीं है जिससे कि तुम ज्ञानमात्र ही तत्त्व है लोकमें यह सिद्ध करना चाहते।

अनुमानसे भी पदार्थोंके अभावकी असिद्धि—अर्थका अभाव अनुमानसे भी नहीं बनता क्योंकि जिस तत्त्वमें प्रत्यक्षसे विरोध आ गया उस अनुमान ज्ञानमें फिर प्रमाणता नहीं बन सकती। जैसे आग गर्म है यह प्रत्यक्षसे जाना जा रहा है और फिर भी हम उसमें अनुमान बनायें कि आग ठंडी होती है पदार्थ होनेसे, तो जो प्रत्तक्ष वाधित बात है उसमें अनुमान नहीं चला करते। सायद यह कहो कि बाह्य पदार्थोंका मत लाने वाला ज्ञान तो भ्रान्तिपूर्ण है, उसमें अनुमानमें बाधा न आयगी यह कहना भी ठीक वहीं क्योंकि इसमें तो अन्योन्याश्रय दोष है। जब पदार्थोंका अभाव सिद्ध हो जाय कि पदार्थ हैं नहीं फिर उनका ज्ञान करे तो कह सकते कि यह ज्ञान भ्रान्त है और जब यह ज्ञान भ्रान्त सिद्ध हो जाय तब यह दृष्टि बनेगी कि पदार्थों के अभावका अनुमान कर लिया उसमें भ्रान्त प्रत्यक्षज्ञानसे कोई बाधा न आयगी। तो अनुमानसे भी पदार्थोंका अभाव सिद्ध नहीं होता।

अर्थाभावक अनुमापक हेतुवोंकी असिद्धि—पदार्थोंका अभाव सिद्ध करने वाले अनुमानके प्रस्तावमें और भी दूसरी बात सुनिये ! अनुमान जिस हेतुसे किया जाता वे हेतु तीन प्रकारके होते हैं—एक स्वभाव हेतु, एक कार्यहेतु और एक अनुपलब्धि हेतु। कार्यसे कारणका ज्ञान करना, जैसे धुवाँ कार्य है, अग्नि कारण है क्योंकि अग्निसे धुवाँ होता है। तब धुवाँ देखकर यह निर्णय किया जाता कि यह अग्नि है, कार्य देखकर कारणका अनुमान किया जाता है। अनुमान भी एक ठोस प्रमाण। लोकव्यवहारमें लोग अनुमान शब्दकी महत्ता नहीं रखते। उसे यों समझ लो कि अनुमानकी बात है, उसमें कोई सचाई नहीं, पर अनुमानका यह अर्थ नहीं। ठीक युक्तियों से पूर्णरूपमें प्रमाणमें उतरी हुई बात अनुमान कही जाती है। तो कार्य देखकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणका ज्ञान होना, यह अनुमान है। स्वभाव देखकर स्वभाववानका ज्ञान होना यह अनुमान है। अथवा कोई चीज नहीं है उसे देखकर किसी बातका अनुमान होना यह भी प्रमाण है। तो यहाँ पदार्थोंके अभावको जो तुम सिद्ध कर रहे हो तो किस हेतुसे कर रहे हो। कार्यहेतुसे तो कर नहीं सकते क्योंकि कार्यहेतुसे विधिका अनुमान होगा। निषेधका अनुमान नहीं होता। इसीप्रकार स्वभावमें भी स्वभाववानका अनुमान होगा, पदार्थके अभावका नहीं। और, कुछ है नहीं ऐसे हेतुसे अनुमान किया जाय तो अनुपलब्धि तो असिद्ध है। बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष मौजूद हैं फिर भी कैसे सिद्ध हुआ कि बाह्य पदार्थोंका अभाव है।

प्रतिभासस्वरूपतासे भी अर्थोंके अभावकी असिद्धि—ज्ञानाद्वैतवादी दार्शनिक यह मान रहा है कि लोकमें केवल ज्ञान ही ज्ञानस्वरूप है। ये पदार्थ कुछ नहीं हैं। इस सम्बन्धमें ये युक्तियाँ भी देते कि ये पदार्थ ज्ञानस्वरूप ही हैं क्योंकि ये प्रतिभासमें आ रहे हैं। जो प्रतिभासमें आता है वह ज्ञानस्वरूप है। जैसे सुख आदिक हो रहे हैं आत्मामें तो वे ज्ञानस्वरूप हैं और फिर मोटेरूपमें यों सिद्ध करते हैं कि हमारे ज्ञानमें जो न आया तो वह क्या है ? सत् नहीं है, असत् है। हमारे ज्ञानमें आया तब कुछ है यों कल्पना होती सो यह सही रूपसे यों नहीं है किन्तु ज्ञानका यह आकार खड़ा हो गया है। दृश्यमान जो पदार्थ हैं ये पदार्थ ये ही के ये ही सही नहीं हैं किन्तु हमारे ज्ञानका यह सब आकार खड़ा हो गया है ऐसा ज्ञानाद्वैतमें माना है। तो उस ज्ञानाद्वैतकी सिद्धि तो तब हो जब अन्य पदार्थका अभाव सिद्ध हो जाय। तो पदार्थका अभाव प्रत्यक्षसे तो सिद्ध होता नहीं, अनुमानकी यह बात चल रही है।

अनुपलब्धि हेतुकी अर्थाभावकी सिद्धिमें अक्षमता—यदि तुम अनुपलब्धि हेतुसे पदार्थका अभाव सिद्ध करोगे अर्थात् यों कहोगे कि ज्ञानातिरिक्त अन्य कुछ पदार्थ नहीं हैं तो यह अनुपलब्धि अदृश्य अनुपलब्धि है या दृश्य अनुपलब्धि है ? अर्थात् एक तो ऐसा कि पदार्थ दिखता नहीं उसकी अनुपलब्धि मानी यह है अदृश्यानुपलब्धि और एक पदार्थ तो है पर इस समय नहीं है। जैसे यहां घड़ा नहीं है तो घड़ा दृश्य तो है पर इस जगह नहीं है। यह है दृश्यानुपलब्धि यदि अदृश्यानुपलब्धिसे तुम पदार्थका अभाव सिद्ध करोगे तो पिशाच आदिक अनेक चीजें अदृश्य हैं, उन सभीका अभाव हो जयगा। दृश्यानुपलब्धि हेतुसे पदार्थोंका अभाव सिद्ध करते हो तब फिर सब जगह सब समय सर्वप्रकार अर्थके अभावकी असिद्धि है। क्योंकि, प्रतिनियत देश आदिकमें ही दृश्यानुपलब्धि अभावको सिद्ध करने वाली है। दृश्य पदार्थोंका ग्रहण नहीं हो रहा इसलिए पदार्थका अभाव है ऐसा यदि कहोगे तो इतनी ही तो बात आयी कि अमुक देशमें अमुक जगहमें घड़ा नहीं है, पर इससे यह तो न सिद्ध हो जायगा कि विश्वमें सभी जगह सभी समय घड़ा नहीं है। जो दृश्यपदार्थ है उसका यदि अभाव है तो वह किसी जगह तो है ही। दृश्यपदार्थका सर्वत्र अभाव नहीं होता। तो अनुमानसे भी अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का अभाव सिद्ध नहीं है। तब विज्ञप्तिमात्र ही तत्त्व है यह मानना तो युक्त नहीं बैठता, क्योंकि विज्ञप्तिमात्रके सद्भावमें बाधा देने वाले प्रमाण ये सब प्रत्यक्ष आदिक हैं ही। पदार्थ सब हैं उनका अभाव नहीं है। पदार्थका जब अभाव नहीं है तो ज्ञान मात्र ही तत्त्व है यह भी बात तुम्हारी सही नहीं बन सकती। इससे यह मानना कि तत्त्व दो प्रकारके हैं—एक ज्ञानतत्त्व और ज्ञेय तत्त्व। केवल ज्ञानतत्त्वका ही हठ न करें कि लोकमें मात्र ज्ञान तत्त्व ही है। ज्ञेय बिना ज्ञान क्या? ज्ञानका अर्थ क्या? जानना। जाननेमें विषय क्या आया? वही ज्ञेय हुआ। तो ज्ञेय पदार्थका मना करने पर ज्ञानतत्त्वकी सिद्धि नहीं बनती।

सहोपलम्भ हेतुसे ज्ञानाद्वैतकी सिद्धिका प्रयास—अब यहाँ ज्ञानाद्वैतवादी यह कह रहे हैं कि हम पदार्थोंका अभाव सिद्ध करके ज्ञानमात्र तत्त्वकी सिद्धि नहीं कर रहे हैं, किन्तु पदार्थ और ज्ञान इनका एक साथ उपलम्भ होता है। पदार्थका और ज्ञानका एक साथ ग्रहण होता है इसलिए इसमें अभेद है, पदार्थ और ज्ञान एक ही बात है क्योंकि इनका एक साथ ग्रहण हो रहा है। जिस किसीके भी सिद्धान्तमें जिन दो पदार्थोंका एक साथ सदा उपलम्भ रहता हो उनमें अभेद माना जाता—जैसे कि द्रव्यका गुणका। इसीतरह हम भी पदार्थमें और ज्ञानमें एक साथ प्राप्ति होनेके कारण अभेद मानते हैं। बस इसी तरह हम केवल विधि द्वारसे सिद्ध कर रहे हैं। पदार्थका अभाव सिद्ध करके हम ज्ञानमात्र तत्त्वको नहीं साध रहे हैं, किन्तु ज्ञानमें और पदार्थमें एक साथ उपलब्धि होनेसे अभेद है, इससे ज्ञानमात्र ही तत्त्व है यह सिद्ध कर रहे हैं। कुछ जरा पूर्वपक्षकार जैसा हृदय बनाकर उसकी बात सुनना चाहिए। देखिये होता है ना एक साथ ग्रहण पदार्थका और ज्ञानका। ज्ञानने जैसे जाना कि यह चौकी है वहाँ दोनों बातें एक साथ चल रही हैं। इस कारण पदार्थमें और ज्ञानमें अभेद है इस तरह ज्ञानाद्वैतकी पुष्टि की है।

सहोपलम्भ हेतुसे ज्ञानाद्वैतकी सिद्धिका अभाव—ज्ञान और ज्ञेयके युगपद् उपलम्भसे ज्ञानाद्वैतकी सिद्धि होती है, ऐसा कहना भी सारहीन है क्योंकि अभेद पक्ष तो प्रत्यक्षसे बाधित है। जैसे कोई शब्दोंको यों कहने लगे कि शब्द कानोंसे नहीं सुने जाते अथवा शब्द नित्य हैं क्योंकि कानोंसे नहीं सुने जाते। यों अटपट बातें चलें वे प्रत्यक्षबाधित हैं। प्रत्यक्षबादितकीं युक्ति देकर सिद्ध करनेकी गुन्जाइश नहीं होती। विज्ञानको छोड़कर बाह्य अर्थ कुछ माने ही नहीं तो तुम जो दो चन्द्रका दृष्टान्त देते हो कि दो चन्द्र एक साथ दिखते हैं सो उनमें अभेद होनेसे चन्द्र एक ही है, ऐसे ही पदार्थ और ज्ञान एक साथ ग्रहणमें आते हैं इस कारणसे यह भी एक ज्ञानमात्र ही है ऐसा दृष्टान्त देना साध्यविकल दृष्टान्त है। अर्थात् जब विज्ञानके सिवाय अन्य कोई बाह्य पदार्थ नहीं होता है तो दो चन्द्र कैसे आ गए? अथवा वह एक चन्द्र भी कैसे आ गया जिसपर दो चन्द्रका भ्रम बताते। फिर दृष्टान्त तुम कैसे दोगे? कारणभूत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो इन्द्रियां हैं उनमें दोष हो जानेसे बाहरमें असत् एक चन्द्र ही तो दो रूपोंसे ग्रहण में आ रहा है। बाह्य अर्थ तो वहाँ भी है मगर इन्द्रियके दोषसे उत्पन्न हुआ ज्ञान था, उसमें बाधक ज्ञान बनता है पीछे। अतएव दो चन्द्रका ज्ञान होना झूठ हैं परन्तु ये खम्भे आदिक जितने पदार्थ हैं ये तो अपना कार्य कर रहे हैं। क्या यह खम्भा खड़ा है यह झूठ है ? यदि झूठ है तो छत कभी की गिर गई होती हम आप सब किसी क्षुद्र देहमें टें टें कर रहे होते। जो पदार्थ ये नजर आते हैं उन सबको यदि झूठ मानते हो तो इनमें जो एक निश्चित कार्य हो रहा है यह कैसे हो रहा है ? असत्यसे, मायासे, कल्पितसे तो कोई नियम नहीं बनता। खम्भेका काम है बोझको सम्हाले रहना। मनुष्यका काम जो है वह होता है जो बोलता है, जो करना है वह करता है तो यह नियत नियत पदार्थोंमें जो नियत नियत अर्थ क्रिया हो रही है उससे तो इसकी सत्यता मालूम होती कि हाँ चीज है यह, तभी तो यह काम कर रहा है।

पदार्थ और ज्ञानके सहोपलम्भकी ऐकान्तिकता अभाव — पदार्थका ज्ञान का एक साथ ग्रहण होता है इस कारण हम पदार्थमें और ज्ञानमें अभेद करें एकमेक बनायें पदार्थोंका अभाव सिद्ध करें और एक ज्ञानमात्र तत्त्व ही सिद्ध करना चाहें तो यहाँ एक साथ उपलब्धि भी तो सिद्ध नहीं है। पदार्थकी और ज्ञानकी एक साथ उपलब्धि होती है ऐसा ज्ञानाद्वैतवादियोंने जो तर्क दिया वह सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि कभी कभी पदार्थके बिना ही किसी ज्ञानकी भी उपलब्धि होती है। पदार्थ और ज्ञान की एक साथ उपलब्धि हो यह नियम नहीं बनता। जैसे पदार्थके ग्रहणके बिना ही जब कि इन्द्रियका व्यापार विश्रान्त हो गया उस अतीन्द्रिय स्थितिमें जो एक अलौकिक सुखका अनुभव होता है बतावो वहाँ पदार्थ क्या है ? बाह्य पदार्थोंके बिना ही तो एक सुखका ज्ञान बन गया। तो पदार्थकी और ज्ञानकी एक साथ उपलब्धि भी नहीं होती।

निरंश तत्त्वकी मान्यतापर क्षणिकवादका जन्म इस प्रकरणमें एक बात यह भी जानना कि क्षणिकवादमें पदार्थ जैसा कि अनेक दार्शनिक मानते हैं पिण्डरूप, अधिकरणरूप, आधाररूप ऐसा पदार्थ नहीं माना गया है किन्तु जैसे यह नीला दिख रहा तो बस नीला पदार्थ है, भींट कुछ नहीं है और इसका यदि रग–रग उतारा जाय, अत्यन्त सूक्ष्म कण उतारे जायें तो वहाँ कुछ चीज नहीं है। नील पीत आदिमें जो भी दिखा वह अतिरिक्त पदार्थ नहीं है, पिण्डभूत पदार्थ नहीं है। बादमें केवल समयका ही टुकड़ा नहीं किया गया है, द्रव्यका, क्षेत्रका, कालका, भावका, सब का अंश अंश करके एक–एक अंशको पदार्थ माना है। जैसे प्रसिद्ध यह है ना कि एक समयवर्ती जो पर्याय है वही क्षणिकवादियोंके यहाँ पूरा तत्त्व माना है। यह तो हुई कालकी अपेक्षा अंशकी बात। ऐसे ही क्षेत्रकी अपेक्षा भी वे केवल एक एक प्रदेशको ही पूर्ण तत्त्व मानते हैं। अखण्ड आकाश है। कोई साधारण दो चार हाथका यह आकाश है यह एक नहीं माना गया, किन्तु क्षेत्रका जो भी एक अविभागी अंश है वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वहाँ तत्त्व है इसी प्रकार द्रव्य भी, कोई एक अखण्ड पिण्डरूप नहीं माना गया किन्तु द्रव्यके जिन–जिन प्रकारोंसे आप खण्ड कर सकते एक एक गुण, एक एक पर्याय जितना छिन्न भिन्न करके जो आखिरी चीज रह सकती है वह द्रव्यमें माना है।

क्षणिकवादमें समुचिता शक्तिके स्थानका अभाव—क्षणिकवादमें कोई समुचित शक्ति नहीं मानी गई, जैसे कि लोग कहते हैं कि यह दस होर्स पावर है तो ऐसा नहीं है उनके यहाँ। एक अश्व-शक्तिमें जितनी डिग्रियाँ हो सकती हैं जैसे कि बुखारकी डिग्रियां होती हैं ऐसे ही उस शक्तिमें जितने अंश हो सकते हैं वे उनके भाव हैं। मतलब एक ऐसी कल्पना होती है कि जिस जगह पहुँचे तो कुछ हाथ ही न लगे। जैसे बुखारमें नापते हैं तो कहते हैं कि अब ९८ डिग्री बुखार है, अब ९७ डिग्री है, अब ९५ डिग्री है, पर कोई एक डिग्री बुखार होता है क्या ? जो बोल चालमें बोल देते हैं कि इसे एक डिग्री बुखार है तो उसका अर्थ है कि ९८ के बाद एक डिग्री है। तो एक शुद्ध अंश क्या है उसपर दृष्टि दें तो कुछ न बनेगा। ९८ डिग्रीका अर्थ क्या है ? तो भेदके भी विभाग करके जो एक अंश हो वह भेद है उनका। तो इस तरह क्षणिकवादने नील पीत आदिकमें पदार्थ माना है। यह रंग है ऐसा नहीं किन्तु यह स्वयं पदार्थ है। तो देखिये कि नील आदिक पदार्थोंके ग्रहणके बिना ही जब कोई पुरुष विश्रामसे बैठा है, इन्द्रियका व्यापार शान्त हो गया है उस समय जो एक अलौकिक आनन्दका सम्वेदन होता है उस ज्ञानमें पदार्थकी और ज्ञानकी एक साथ उपलब्धि नहीं है इस कारण अर्थमें और ज्ञानमें उपलब्धिका हेतु देकर अभेद एकत्व नहीं सिद्ध कर सकते और न ज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध होता। सभी पदार्थ हैं और उनका ज्ञान प्रमाणभूत है।

सहोपलम्भसे पदार्थोंके नानात्वकी सिद्धि—केवल ज्ञानमात्र ही तत्त्व है ऐसा सिद्धान्त कहने वाले यह युक्ति दे रहे हैं कि चूंकि पदार्थ और ज्ञान दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं अतएव ज्ञानमात्र ही तत्त्व है। इसपर समाधान किया जा रहा है कि प्रथम तो यह बात है कि पदार्थके बिना भी सुख आदिक सम्वेदन देखे जाते हैं इससे यह बात युक्त नहीं बनती कि पदार्थ और ज्ञान दोनों एक साथ ग्रहणमें आते हैं फिर यह नियम भी नहीं है कि जो एक साथ ग्रहणमें आये वह एक हो जाय। जैसे पदार्थका रूप और प्रकाश, ये दोनों एक साथ नजर आते हैं। जहाँ जहाँ धूप पड़ रही है उस जमीनका रूप भी नजर आता है और प्रकाश भी समझमें आता है पर एक साथ दोनोंका ज्ञान होनेसे क्या वे दोनों एक हो जाते हैं ? रूप और प्रकाश क्या ये दोनों एक ही तत्त्व हैं ? अलग अलग पदार्थ हैं। तो एक साथ ग्रहणमें आनेसे एक हो जाय ऐसा कोई नियम नहीं है। और भी देखिये सर्वज्ञका ज्ञान चलता है तो सर्वज्ञके ज्ञानमें ये ये पदार्थ हैं वह भी है और अन्य भक्तजनोंके चित्त भी हैं। ये सब एक साथ हैं ना, पर भेद मानते हैं स्वयं। सायद यह कहो कि हम सर्वज्ञ और ज्ञानान्तर मानते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही नहीं। तो तुम्हारे मानने मात्रसे क्या होता है ? समस्त लोकको जो ज्ञात हो रहा है ऐसा यह ज्ञानान्तर याने अनेक ज्ञान यह सब तो है ही केवल मानने मात्रसे अभाव नहीं होता और फिर ज्ञानाद्वैतवादियोंके यहाँ भी सर्वज्ञकी स्तुति की गई है और अनेक ग्रन्थोंमें मङ्गलाचरणमें भी प्रमाणभूत सर्वज्ञके लिए नमस्कार करनेके बात कही गई है इस कारण सब कुछ है, एक साथ पदार्थ भी है, सब ज्ञान भी हो रहा है पर एक साथ होनेसे ज्ञान और पदार्थ एक न बन जायेंगे।

सहोपलम्भ होनेसे मात्र विज्ञप्तिके ही रहनेका अकारण -- यदि ज्ञान व पदार्थका सहोपलम्भ होनेसे एक ज्ञानको ही मानते हो तो ज्ञान और पदार्थ एक साथ होनेसे सिर्फ ज्ञान ही क्यों रहे हम कहें कि सिर्फ पदार्थ ही रहे। तो सब हैं, सर्वज्ञ भी हैं, अन्य ज्ञान भी हैं, अनेक पदार्थ भी हैं, यदि ये सब कुछ न हों तो इनके सत्त्वकी कल्पनामें बुद्धि नहीं लग सकती। ये सब हैं, इसपर ज्ञानाद्वैतवादी कहता है कि भाई सबका विचार चलाते रहो। ये पदार्थ हैं, सर्वज्ञ हैं, अन्यज्ञान भी हैं, इतने तो विचार किये जा रहे हैं किसलिए कि विचार करके इन्हें त्याग देवें इस कारण अदोष नहीं है। तो उत्तर दिया जाता है कि जो त्यागने योग्य चीजें हैं, त्यागके अङ्ग हैं उनका तो पहिलेसे ही स्वीकार न करना ही श्रेष्ठ है। सर्वज्ञका पदार्थका अनेक ज्ञानका विचार करके फिर इन्हें त्यागते हो तो उससे तो अच्छा है कि पहिलेसे ही विचार मत करें, स्वीकार मत करें। यदि यह कहेंगे कि उन स्तवनोमें भी अद्वैतकी ही डिग्री की गई है, केवल एक ज्ञानमात्र तत्त्वकी स्तुति की है तो कोई स्तुति करने वाला हो, किसीकी स्तुति की जाती हो और स्तुति करे और स्तुति करनेका फल किसको ये चार बातें तो हो गई। अद्वैत कहाँ रहा ? तो ज्ञानमात्र ही एक तत्त्व है, पदार्थ अन्य कुछ नहीं है यह बात युक्त नहीं है।

सहोपलम्भके विकल्प और उनसे भी विज्ञप्तिमात्रकी असिद्धि -- क्षणिकवादमें जो सहोपलब्धि हेतुसे केवल ज्ञानमात्र सिद्ध किया जा रहा है कि पदार्थ और ज्ञान एक साथ पाये जाते हैं इस कारण ज्ञानमात्र ही एक तत्त्व है तो इस सहोपलम्भका अर्थ क्या ? क्या एक साथ पाये जानेका नाम सहोपलम्भ है ? या क्रमसे नहीं पाये जाते हैं ज्ञान और पदार्थ इसका नाम सहोपलम्भ है, या केवल एक ही चीज मिल रही इसका नाम सहोपलम्भ है। पदार्थ और ज्ञान एक साथ पाये जाते हैं ऐसा हेतु देकर तुम एक ज्ञानको ही तत्त्व मानना चाहते, पदार्थको उड़ाना चाहते तो एक साथ उपलम्भ होता है इसका अर्थ क्या ? क्या एक ही समयमें एक जगह एक साथ उपलम्भ होते हैं ? यह तुम्हारा यदि मंतव्य है तो इसमें तो ज्ञानाद्वैत मंतव्यसे विरुद्ध बात सिद्ध हुई। एक साथ रहे इसमें भेद सिद्ध हो ही गया। जैसे शिष्यके साथ गुरु आया तो दोनों एक साथ आये ना। तो जो एक साथ पायी जायें वे तो अनेक चीजें हुआ करती हैं। ज्ञान और अर्थ यदि एक साथ पाये जा रहे हैं तो इससे तो भिन्न भिन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बातें सिद्ध हुई। कोई एक मिला हुआ अनाज होता है मिस्सी गेहूँ और जौ मिले हैं वे एक साथ पाये जा रहे हैं इससे क्या वे एक हो गए? एक साथ जितने पाये जायें उतने ही हैं वे सब। तो पदार्थ और ज्ञान एक साथ पाया जाता है इस कारण ज्ञान ही रह गया, पदार्थ नहीं रहा यह बात असङ्गत है। एक बातमें दो बातें कहाँ सम्भव हैं। एक साथ होना यह तो अनेक पदार्थ हों तो कहा जा सकता है। केवल एक ही चौकी रखी है और कोई कहे—देखो एक साथ चौकी रह रही है। और अनेक बातें हों तब एक साथ शब्द बोला जा सकता है। जैसे तखत, चौकी, फर्स ये सब एक साथ मिल गए। तो एक साथ मिल जानेसे अनेकपना सिद्ध होता है। केवल ज्ञान ही है अन्य कुछ नहीं है यह सिद्ध नहीं होता।

क्रमोपलम्भाभावसे भी विज्ञप्तिमात्र मन्तव्यकी असिद्धि—यदि यह कहो कि क्रमसे हमारी प्राप्तिका अभाव है इस कारण ये एक हैं अर्थात् ज्ञान और पदार्थ ये क्रमसे ग्रहणमें नहीं आते इसका नाम सहोपलम्भ है। सहोपलम्भका अर्थ है—सह मायने साथ, उपलम्भ मायने मिलना। क्रमसे ये नहीं मिल रहे हैं ज्ञान और पदार्थ, इसका नाम सहोपलम्भ मानते हो तो ऐसे तुच्छाभावरूप उपलम्भका अभाव तो वादी प्रतिवादी दोनोंने नहीं माना। और फिर यह बतावो कि क्रमसे मिलनेका अभाव है इससे तुम अभेद एकत्व सिद्ध कर रहे हो या भेदका अभेद सिद्ध कर रहे हो? इन विकल्पोंमें यह पूछा गया है कि जो कुछ यह मानते हो कि पदार्थ और ज्ञान ये क्रमसे ग्रहणमें नहीं आते इस कारण दोनोंका एकत्व हो गया और एक ज्ञानमात्र तत्व रह गया तो क्रमसे ज्ञान और अर्थ ग्रहणमें न आनेसे तुम अभेद एकत्वकी सिद्धि करते हो या यह सिद्ध करते कि भेद नहीं रहा। यदि एकत्व सिद्ध करते हो तो यह तो असङ्गत बात है। क्रमसे अर्थ और पदार्थ नहीं मिल रहे इस अभावरूप हेतुसे और तुम एकत्वका सद्भाव सिद्ध करते तो अभावका और भावका क्या जोड़ा। अभावरूप हेतुसे भावरूप सद्भाव साध्य कैसे सिद्ध होगा? जो सर्वदा असत् है उसका किसी वस्तुसे क्या अनुमान भी किया जा सकता? उनमें कोई सम्बन्ध नहीं है फिर एक वही हेतु हो जाय व वही एक साध्य हो जाय, यह बात नहीं बनती। जैसे धुवाँ और अग्नि दोनों सत्तारूप चीजें हैं तो उनमें कार्य कारण भेद बन जाता है। धुवाँ होनेसे अग्निका ज्ञान हो जाना युक्त बात है, पर अर्थ और ज्ञान ये क्रमसे प्राप्त नहीं होते ऐसे अभावके द्वारा तुम एकत्व सिद्ध करो तो नहीं बन सकता। जैसे एक अनुमान करो—कोई सीसमको देखकर कि यह वृक्ष है क्योंकि सीसम होनेसे। तो कुछ लगता ठीक है, जो सीसम होता है वह वृक्ष तो होता ही है। उसमें तादात्म्य सम्बन्ध बन गया तो गम्य गमक भाव बन जायगा अर्थात् ज्ञान कराने वाला और ज्ञानमें आने वाले ये सम्बंध बन जायेंगे पर अर्थ और ज्ञानका क्रमसे ग्रहणमें अभाव है इस कारणसे अर्थ और ज्ञान में एकत्व बन जाय यह नहीं हो सकता।

सहोपलम्भहेतुसे अद्वैतकी सिद्धिकी अशक्यता—यदि कहोगे कि हम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्रमसे उपलम्भके अभावसे, सहोपलम्भ भेदसे अभेद सिद्ध कर रहे तो अभेद स्वभाव होनेसे यहाँपर भी साध्य-साधनका सम्बन्ध नहीं बनता और फिर अनिष्ट ही सिद्ध होगा। तब भेदका प्रतिषेध होनेपर भी ज्ञानमात्र यह तत्व है यह बात तो नहीं बन सकती, क्योंकि तुम भेदका अभावमात्र सिद्ध कर रहे हो, ज्ञान कहाँ सिद्ध हुआ। यह क्रमसे उपलम्भका अभावरूप हेतु तो केवल अभावको सिद्ध करनेमें चरितार्थ होता है, यदि फिर भी उससे सिद्धि मानोगे तो कमसे कम ये दो बातें तो आ ही गईं कि एक जानने वाला ज्ञान है और एक जाननेमें आया हुआ तत्व है, दो बातें तो हों ना कमसें कम। तुम केवल सारा विश्व ज्ञानमात्र ही है यह सिद्धान्त रख रहे तो यह तो बन ही न सकेगा। बाह्य पदार्थोंकी सिद्धिका भी साधक है यह ज्ञान। सब पदार्थ हैं ज्ञान भी है। जगतमें दो तत्व हैं —एक ज्ञानतत्व और एक ज्ञेयतत्व। जो जानने वाला है आत्मा जो जान रहा है उपयोग वह तो है ज्ञानतत्व और चूँकि समस्त जितने भी पदार्थ जाननेमें आते हैं वे हैं ज्ञेयतत्व।

भेदविज्ञानसे ही कल्याणका आरम्भ – विज्ञानाद्वैतवादीका प्रयोजन तो यह था कि हम जगतको केवल ज्ञानमात्र मानें। पदार्थोंका निषेध करदें तो राग द्वेष मोह न बनेंगे। केवल हम ज्ञानमात्र ही तत्व निरखते रहे तो वहाँ विकल्प न उठेगा और मुक्ति प्राप्त हो जायगी। किन्तु लोग सत्य बातका लोप करके अपने मन-माफिक किसी तत्वकी हठ बनाकर कल्याण चाहें तो यह कैसे हो? यद्यपि यह मंशा तो ठीक है कि हम जगतमें पदार्थ ही न कुछ मानें, केवल एक ज्ञान ज्ञान ही तत्व है यों मानें इससे मोह न रहेगा। लेकिन, यह तो केवल कहने भरकी बात रह जाती है। जहाँ मूलमें अज्ञार छाया है, पदार्थ है और भाँति, समझते हैं और भाँति तो वहाँ एक ज्ञान मग्नता हो कैसे सकती है? वह ज्ञान तो शंकित और अधीर रहेगा। मोह राग-द्वेष मिटानेके लिये भेदविज्ञानका सहारा लेना चाहिए न कि पदार्थके अस्तित्वका ही मना करके केवल ज्ञानमात्र ही तत्व है, ऐसा एकान्त हठ करना चाहिए। पदार्थ हैं वे सब अपने स्वरूपमें हैं, वे सब मेरे ज्ञेयतत्व हैं, मैं ज्ञानतत्व हूं, ज्ञेयतत्वसे जुदा हूँ, अनन्तानन्त बाकी सब जीव और अनन्तानन्त समस्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और असंख्यात काल द्रव्य ये सब ज्ञेयतत्व हैं, मुझसे भिन्न हैं और मैं स्वयं ज्ञानतत्व हूँ, इस प्रकार स्वज्ञानतत्वको इस भेदतत्वसे न्यारा परखकर फिर ज्ञानतत्वमें ही दृष्टि रखना यह तो है कल्याणका उपाय, पर पदार्थ ही कुछ नहीं है, केवल ज्ञानमात्र ही तत्व है, इसमें व्यवस्था ही नहीं बन सकती। जो बात जैसी नहीं है उसको वैसी सिद्ध करनेमें व्यवस्था नहीं बना करती।

विज्ञप्तिमात्रकी सिद्धिमें एकोपलम्भकी हेतुताका अभाव—ज्ञानाद्वैतवादियोंका ज्ञानमात्र ही तत्त्व है ऐसा समर्थन करनेमें मुख्य युक्ति एक यह हो रही है कि पदार्थ और ज्ञान एक साथ पाये जाते हैं इस कारण ज्ञानमात्र ही तत्त्व है। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वहाँ पूछा गया था कि एक साथ पाये जाते हैं इसका अर्थ क्या है ? क्या यह अर्थ है कि इनमेंसे केवल एक ही पाया जा रहा है इसलिये अर्थ कुछ नहीं है। ज्ञानमात्र ही तत्व है, ऐसा कहनेपर उनसे पूछा जा रहा है कि एकोपलम्भका अर्थ क्या है ? क्या यह मतलब हैं कि एकरूपसे पाया जाता है। पदार्थ और ज्ञान एक रूपसे पाया जाता है यह एकोपलम्भका मतलब है या एकके द्वारा ही पाया जाता है यह एकोपलम्भका मतलब हैं अथवा एक तादात्म्यरूपसे पाया जाता है यह एकोपलम्भका तात्पर्य है या एककी ही प्राप्ति हो रही है यह एकोपलम्भका मतलब है ? यों ४ विकल्पोंमें एकोपलम्भका स्वरूप पूछा गया है। यदि कहो कि ज्ञान और पदार्थ एक रूपमें पाये जाते हैं यह एकोपलम्भका अर्थ है तो यह तो तुमने शंका ही दुहरा दी; अर्थ कुछ नहीं निकला। जैसे कोई कहे—शब्द अनित्य है, अनित्य होनेसे तो यह भी कोई युक्ति है। जिसे सिद्ध करना चाहते हो उसीका हेतु दे रहे हो। तो जैसे शब्द अनित्य है अनित्य होनेसे यह कथन विवेकपूर्ण नहीं है साध्यसम हैं इसी प्रकार एक रूपसे अर्थ और ज्ञान पाये जाते हैं उसका नाम एकोपलम्भ है। तो यह तो प्रश्नके ही समान उत्तर हो गया और फिर ऐसा एकोपलम्भ है भी नहीं।

लोकमें मात्र एकोपलम्भका अभाव—हम पदार्थको जानते हैं तो बहिर्मुख होकर जानते हैं और जब ज्ञानको जानते हैं तो अन्तर्मुख होकर जानते हैं तो तब इसमें भेद तो अत्यन्त सिद्ध है ही। ये खम्भे चौकी वगैरह सब ज्ञानमें आ रहे हैं और बाहर ही स्थित हैं इस तरह ज्ञानमें आता है। और ज्ञान उसका ही सही, पर यहाँ है मैं जानता हूँ अन्तर्मुख होकर उस ज्ञानका ज्ञान करते हैं तो यों अन्तर्मुख और बहिर्मुख जो प्रतिभास हो रहा है उसीका नाम तो ज्ञान और ज्ञेय है। इन पदार्थोंको मना करके ज्ञानमात्र तत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। और फिर जानना, जब कोई बाहरी चीज ही नहीं है तो जाननेका स्वरूप क्या रहा ? जाननेका अर्थ क्या है ? जब कोई बाहरी वस्तु नहीं तो, जाना क्या गया ? जाननेमें और होता क्या ? बाह्य पदार्थ हैं तब ज्ञानका स्वरूप भी बनता है, केवल ज्ञानमात्र ही तत्व है यह बात सिद्ध नहीं होती।

एकके द्वारा उपलम्भरूप सहोपलम्भ हेतुकी असिद्धि—यदि यह कहो कि एकोपलम्भका अर्थ यह है कि एकके द्वारा ही प्राप्ति होती है तो यह बात तो तब सिद्ध हो जब अन्यका, पदार्थका ज्ञान न बनता हो। पर यह तो सिद्ध नही है। समस्त पदार्थ एकदम स्पष्ट नजर आ रहे हैं कि ये सब चीजें हैं। जिस समय कोई एक पदार्थ है उसी समय ये अनेक भी मौजूद हैं। फिर एकके द्वारा ही उपलम्भ होनेका नाम एकोपलम्भ नहीं बनता। इसी प्रकार एकमेक होकर अर्थका और ज्ञानका ग्रहण होना इसका नाम एकोपलम्भ कहना सही नहीं बनता, क्योंकि जो चित्र विचत्र चीजोंका ज्ञान है उसमें तो एक रूपमें उपलब्धि होती नहीं। रङ्ग बिरङ्गी अनेक चीजोंका जो ज्ञान होता उनमें, उस ज्ञानका विवेचन नहीं किया जा सकता यह तो बात यों असिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि ज्ञानमें तो बराबर आरहा है, विवेकसे इन सबकी भिन्न भिन्न प्रतीति हो रही है ये सब चीजें हैं और यह मैं ज्ञान हूँ, केवल ज्ञानमात्र है दुनियामें तत्व और यह पदार्थ कुछ नहीं है। ऐसा माननेमें तो प्रत्यक्षसे बाधा आती है। ये सब व्यवहारमें काम भी आते हैं। यदि मायारूप होते तो आज तो चस्मा लगाया कल चौकी लगाई जावे मायामें तो यही हाल है। चस्मा देखनेके ही काम आता चौकी कुछ रखनेके ही काम आती। ये सब जो प्रतिनियत जुदे जुदे उपयोग हैं ये भी यह सिद्ध करते हैं कि हैं ये सब पदार्थ भिन्न भिन्न।

एकका ही उपलम्भ होने रूप सहोपलम्भ हेतुकी असिद्धि— यदि यह कहो कि एकका ही उपलम्भ होनेका नाम सहोपलम्भ है तो ज्ञान और पदार्थ इनमेंसे केवल एकका ही ग्रहण हो रहा है यह कैसे मान लिया जाय। उनमें एकका ही कैसे ग्रहण हो यदि एकका ही ग्रहण माना जाय तो बतावो क्या ज्ञानका ग्रहण हुआ या पदार्थका ग्रहण हुआ? यदि कहो कि ज्ञानका ग्रहण हुआ तो इसी पर ही तो विवाद है वह तो असिद्ध हेतु है। ज्ञानकी ही उपलब्धि होती है यह हम कहाँ मानते हैं। अर्थ भी पाया जा रहा है। यदि कहो कि चूँकि अर्थका अभाव है अतः अर्थकी अनुपलब्धि है, तो ऐसा कहनेमें तो इतरेतराश्रय दोष आता है। जब पदार्थोंका असत्व सिद्ध हो जायगा तब यह माना जा सकेगा कि ज्ञानकी उपलब्धि है। और, जब ज्ञानकी उपलब्धि होना सिद्ध हो जायगा तो यह माना जायगा कि पदार्थका अभाव है, और यों तो ज्ञानका भी अभाव हो जायगा। केवल अर्थकी ही प्राप्ति मानी गयी तो ज्ञान रहा कहाँ? वस्तुकी व्यवस्था तो ज्ञानपूर्वक होती है। और स्वरूप तथा कारणके भेदसे ज्ञान और पदार्थोंमें भेद है पदार्थ दूसरी चीज है ज्ञान दूसरी वस्तु है। केवल ज्ञान ही तत्त्व हो पदार्थ न हो यह नहीं है। इनका बराबर भेद नजर आ रहा है। स्वरूप भी न्यारा-न्यारा है। इन पदार्थोंका स्वरूप मूर्तिकता जीवका चेतना, अन्य पदार्थोंका भी स्वरूप उन उनका असाधारण स्वरूप है और कारण भेद भी है। ज्ञानके कारण और हैं इन पदार्थोंके कारण और हैं। ज्ञान तो अपनी ज्ञान शक्तिसे प्रकट होता है और प्रतिबन्धक कारणके अभावमें प्रकट होता है और ये पदार्थ अपनी शक्तिसे अपने परिणमनको प्रकट किया करते हैं, सो कारण भेद भी है और फिर ज्ञान तो है ग्राहक अर्थात् जानने वाला और नील आदिक पदार्थ हैं ग्राह्य। ये ग्रहणमें आते हैं। यदि इसे भी एक मान लोगे तो इसमें यह भेद नहीं हो सकता। ज्ञान तो ग्राहक हैं और पदार्थ ग्राह्य हैं। हम यों कह बैठे कि ये पदार्थ तो जानने वाले हैं और ज्ञान जाननेमें आता है। जब इन दोनोंको एकमेककर डाला पदार्थ और ज्ञानको तो जब एक हो गए तो जानने वाला पदार्थ हो गया और जाननेमें आया ज्ञान यों कह दो तो क्या आपत्ति फिर होगी? जब एक ही है तो कुछ करो। तो यों ज्ञानका ही अभाव बन जायगा। तो इसमें स्वरूपभेद भी है, कारण भेद भी है। ज्ञानके कारण इन्द्रियां हैं और ये नीले आदिक पदार्थ हैं रंग बिरंगे, इनके कारण हैं अज्ञानमय ये वस्तु। इस कारण ये सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थ भी हैं ज्ञान भी हैं। हठ मत करें कि ज्ञान ही एक तत्त्व है और पदार्थ कुछ नहीं है।

ज्ञानाद्वैतका मन्तव्य और उसमें प्रत्यक्ष बाधा—भैया ! यह सब वर्णन इस बुनियादपर चल रहा है कि इस ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूपको निर्णय किया है प्रमाण का स्वरूप है – जो स्व और अपूर्व अर्थको जाने सो प्रमाण है । इस स्वरूपकी बात सुनकर ज्ञानाद्वैतवादी यह कह रहे हैं कि ज्ञानका स्व तो जरूर है, पर पदार्थ कुछ नहीं है। पदार्थका अभाव मानकर केवल ज्ञानमात्र तत्व माना जा रहा है और उस ज्ञानमात्र तत्वका जो ग्रहण करे वह ज्ञान प्रमाण है, ऐसी बात ज्ञानाद्वैतवादकी ओरसे रखी गई है। ज्ञानाद्वैतवादमें यह बताया गया है कि देखो, जो चीज प्रतिभात होती है वह सब ज्ञान है। जैसे हमारा सुख हमें प्रतिभात होता है, जाननेमें आता है तो वह सुख क्या है ? ज्ञानरूप है, इसी प्रकार ये सब पदार्थ जो आँखों दिख रहे हैं या जो मनसे समझे जा रहे हैं सबके सब प्रतिभात होते हैं तो वह भी ज्ञानरूप है ऐसा अनुमान बनाकर ज्ञानमात्र तत्व सिद्ध किया था। उसके उत्तरमें कह रहे है कि ये पदार्थ प्रतिभासमान होते हैं इस कारण ये सब ज्ञान ही रूप हैं, ऐसा कहनेमें इस हेतुका अर्थ क्या है ? क्या ये पदार्थ स्वतः प्रतिभासमान होते हैं ?

मैं चौकी को जानता हूं ऐसा कहनेमें प्रतिभास करने वाला तो मैं हुआ, चौकी तो नहीं हुई। फिर यह चौकी ज्ञानस्वरूप कैसे बन गई ? ज्ञानाद्वैतमें सारे विश्वको ज्ञानस्वरूप माना है। सब कुछ पदार्थ ज्ञान ही ज्ञान हैं। यह खम्भा नहीं है केवल ज्ञान है और उसके लिये वे ऐसा उदाहरण देंगे कि स्वप्नमें जो कुछ देखा महल, वन, उपवन, जानवर, मनुष्य तो वहा केवल ज्ञानका आकार ही नजर आता है चीज वहाँ कुछ नहीं है। है ना ऐसा । वह सब ज्ञानका आकार बन रहा है तो जैसे स्वप्नमें ज्ञान का आकार ही दीखा करता है पदार्थ कुछ चीज नहीं है इसी प्रकार जब तक भ्रम है जीवोंको अज्ञान है तब तक ये सब पदार्थ सचसे मालूम होते हैं। हैं सब ज्ञानके ही आकार। यों केवल समस्त पदार्थोंको ज्ञानमात्र मानते हैं। किन्तु जानने वाला कुछ है जाननेमें आया कुछ मृसा तो सबको प्रतीत हो रहा है।

पदार्थोंके स्वतः प्रतिभासमानत्वकी असिद्धि—ज्ञानाद्वैतवादीने यह अनुमान ज्ञान प्रमाण रखा कि जो कुछ प्रतिभासित होता है वह सब ज्ञान। जैसे कि सुख दुःख आदिक प्रतिभासित होते हैं, तो ये क्या कोई वस्तु हैं। ज्ञान ही हैं। इसी प्रकार बाहरमें भी जो नील पीत आदिक पदार्थ प्रतिभास होते हैं वे सब क्या कोई वस्तु हैं ? वे भी ज्ञान ही हैं, ऐसा अनुमान ज्ञानका प्रमाण देकर ज्ञानाद्वैतवादी समस्त विश्वको एक ज्ञानमात्र सिद्ध करना चाहता है। उसके प्रसंगमें स्याद्वादीने यह पूछा कि यह जो तुम्हारा हेतु है कि जो कुछ प्रतिभासमान होता है वह सब ज्ञान है। तो यह जो अव-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भासमान है यह स्वतः है या नहीं ? नील पील आदिक पदार्थ अपने आप ही प्रतिभासमान होते हैं या किसीपर ज्ञान आदिकसे प्रतिभासमान होते हैं ? यदि कहोगे कि ये समस्त पदार्थ अपने आपके ही द्वारा प्रतिभासमान होते हैं तो यह बात तो असिद्ध है क्योंकि ये पदार्थ ज्ञानकी अपेक्षा लिए बिना खुद अपने आपमें प्रतिभासमान नहीं हुआ करते हैं। और, यह तो सबको ही ध्यान है कि जब पदार्थोंका प्रतिभास होता है तो इस शैलीसे होता है कि मैं इस नील पदार्थको जानता हूँ। चाहे वह ऐसे शब्द न बोले लेकिन ज्ञान होनेमें तरीका यही हुआ करता है। तो इन पदार्थोंसे भिन्न जो कुछ मैं हूँ, इसके द्वारा ये पदार्थ प्रतिभासमान होते हैं। कहीं एक ही तत्त्व नहीं है कि यह पदार्थ है और यह अपने आप प्रतिभासमान हुआ करता है। ज्ञान निरपेक्ष होकर ये पदार्थ प्रतिभासमान नहीं होते। मैं नील आदिक पदार्थको जानता हूं, इस शैलीमें अहं–अहं रूपसे प्रतिभासमान जो कुछ ज्ञान है उस ज्ञानके द्वारा जो कि इन पदार्थोंसे भिन्न है यह सब प्रतिभास हो रहा है। ये पदार्थ स्वतः प्रतिभासमान नहीं हैं।

पदार्थमें स्वतः प्रतिभासमानत्वकी विरुद्धता – यदि कदाचित् थोड़ी देर को मानलो कि ज्ञानकी अपेक्षा न रखकर ये पदार्थ स्वतः प्रतिभासमान होते हैं तो स्वतः प्रतिभासमान रूप हेतुसे तुम क्या सिद्ध करना चाहते हो ? क्या यह सिद्ध करना चाहते हो कि ये पदार्थ स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं ? इन पदार्थोंकी ज्ञातता सिद्ध करना चाहते क्या ? तो पदार्थोंकी ज्ञातता चीज है क्या ? क्या प्रतिभासमात्र ? यदि कहो हाँ प्रतिभासमात्र है तो इसीपर ही तो यह विवाद चल रहा है। हेतुकी सिद्धिमें ही यह सिद्ध हो गया अर्थात् साध्य कुछ नहीं रहा। जो इसका हेतु कहा वही तुमने साध्य कहा कि ये सब पदार्थ ज्ञानमात्र हैं उसीको ही सिद्ध कर रहे हैं। तो ज्ञातता सिद्ध नहीं होती। और, ज्ञातता सिद्ध नहीं होती है तो असिद्ध तो कहींका हेतु नहीं बनता। ये पदार्थ अपने आपका प्रतिभास तो करलें और इन पदार्थोंमें ज्ञातता न मानीं जाय तो परस्पर विरुद्ध बातें हैं इस कारण ये पदार्थ स्वतः प्रतिभास नहीं हैं। जिससे कि तुम समस्त विश्वको ज्ञानमात्र सिद्ध कर सको।

ज्ञानाद्वैतवादी द्वारा "अहंप्रत्ययसे पदार्थग्राहकता" पर आठ विकल्पों का निर्देश - अब इसके बाद ज्ञानाद्वैतवादी बहुत लम्बे समय तक अपना पूर्व पक्ष स्थापित करनेके लिए अहं प्रत्ययमें बाधा उपस्थित कर रहे हैं। जो जैन लोग यह कहते हैं कि मैं नील आदिक पदार्थोंको जानता हूं इसमें अहंप्रत्ययवेद्य पदार्थ जुदा है और ये नीलादिक पदार्थ जुदे हैं। तो इसमें यह बतावो कि अहंप्रत्ययके द्वारा जो कि नीलादि पदार्थका ग्राहक है सो उसमें यह अहंप्रत्यय अर्थात् अहं मैं हूं मैं हूँ ऐसा जो ज्ञान है यह जाना हुआ ज्ञान है या न जाना हुआ ज्ञान है ? व्यापाररहित ज्ञान है या व्यापारसहित ज्ञान है ? अहंप्रत्यय करके जो कुछ मैं के सम्बन्धमें समझा वह निराकार ज्ञान है अथवा वह अहंका ज्ञान साकार है अथवा अहंका ज्ञान पदार्थके कालसे भिन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

काल वाला है ? अथवा पदार्थके समूहके समय वाला ज्ञान है । मैं के द्वारा जो पदार्थों को जाना वह पदार्थोंके कालमें ही मैं का ज्ञान बना या मैं का ज्ञान पहिले पीछे बना और पदार्थ उससे भिन्न कालमें रहा या एक समान कालमें रहे ऐसे ये ८ प्रश्न किये ज्ञानाद्वैतवादीने जैनोंके प्रति । और उन ८ विकल्पोंका क्रमशः ये खण्डन कर रहे हैं ।

नीलादिकग्राहक अहंप्रत्ययको गृहीत माननेपर शंकाकार द्वारा आपत्ति –यह अहं प्रत्यय ज्ञान "मैं जानता हूँ इसमें जो अहं शब्दसे पकड़ा गया वह ज्ञान यदि गृहीत है अर्थात् ज्ञानसे जाना गया हैं तो क्या उस ही ज्ञानसे जाना गया या किसी परसे जाना गया ? यदि उस ही ज्ञानसे जाना गया, मैं जानता हूं इस चौकीको इस शैलीसे उठी हुई जो भीतर एक झलक है उसमें जो मैं का ज्ञान हुआ उसको ही मैंने जान लिया तो वह तो स्वरूप मात्रका प्रकाशक रहा। मैं चौकीको जानता हूं इसमें जो मैं है उसे अपने आपके द्वारा अपनेको जान लिया तो बस यहीं काम खतम हो गया ।स्वरूपमात्रका ही प्रकाश कर पाया । बाह्य अर्थका वह प्रकाश नहीं कर सका । तो इससे यह सिद्ध होगा कि बाह्यमें कुछ भी पदार्थ नहीं हैं। यदि कहो कि उस ज्ञानका ज्ञान दूसरे ज्ञानके द्वारा जाना गया तो अनवस्था दोष हो गया फिर उस दूसरे ज्ञानकी भी शैली यह बनेगी कि मैं उस ज्ञानको जानता हूँ तो उसमें भी कुछ जान जाऊँगा, वह दूसरे ज्ञानसे जान जायगा तो वहाँ भी यह शैली बनेगीं तब यों अनवस्था दोष होगा । यह सब ज्ञानाद्वैत मानने वाले क्षणिकवादी लोग जैनोंके प्रति दूषण देते जा रहे हैं कि पदार्थ कहाँ है, पदार्थ सब कुछ एक ज्ञानमात्र है । तो अहं प्रत्ययसे जो मैं जान गया हूं उस ज्ञानका ग्रहण करने वाला दूसरा ज्ञान माननेपर अनवस्थाका दोष हुआ ।

इस सम्बन्धमें यह भी न कह सकेंगे, अन्य लोग अर्थात् जैन नैयायिक आदिक सभी लोग जो कि केवल ज्ञानमात्र तत्त्व नहीं मानते वे यह भी नहीं कह सकते कि दूसरे ज्ञानमें पूर्वज्ञानको तो ग्रहण नहीं किया किन्तु दूसरे ज्ञानने पदार्थका ही सीधा ग्रहण किया । क्यों न कह सकेंगे ? यों कि दूसरे ज्ञानके निकट तो पूर्व ज्ञान है और पूर्वज्ञानने ही उत्तरज्ञानको उत्पन्न किया है अतः उत्तरज्ञानके द्वारा पूर्वग्राह्य ही बनता है । ये ज्ञानाद्वैतवादी यह कह रहे हैं कि मैं चौकीको जानता हूँ इस शैलीसे जानता हूँ कि ज्ञान दूसरे ज्ञानके द्वारा ही तो अनवस्था है । यदि यह कहो कि दूसरे ज्ञानने पदार्थों को जाना तो भाई पूर्वज्ञानके जाननेको तो नया ज्ञान बनाया गया था और वह जानने लगे सीधे पदार्थोंको तो यह तो नीतिविरुद्ध बात है । ग्राह्यताका तो हक इस पूर्वज्ञान को है । उस पूर्वज्ञानको जाने बिना यह ज्ञान पदार्थको कैसे जान लेगा । तो मैं जानता हूं इन चौकी आदिक पदार्थोंको इसमें जाना क्या जाय ? यह मैं किसी ज्ञान द्वारा गृहीत हो करके पदार्थको जाने यह द्वैत सिद्ध होता नहीं ।

अगृहीत ग्राहककी सिद्धिमें शङ्काकार द्वारा दोषापत्ति—यदि कहो कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसमें मैं का ग्रहण भी न होगा किसी दूसरेके द्वारा और फिर भी पदार्थको जान लेगा तो इसमें तो बड़ा दोष आता है। जैसे कि बिना ही ग्रहण किए ही जानने लगा कोई तो आपकी बातको मैं ग्रहण तो नहीं कर रहा, पर मैं भी जानने लगूँगा। इस कारण मैं अमुकको जानता हूं यह व्यवस्था नहीं बन सकती। यह सब पूर्वपक्षकार कहते जा रहे हैं।

सव्यापार या निर्व्यापार होकर अहं प्रत्ययकी ग्राहकताकी सिद्धिमें शङ्काकार द्वारा दोषापत्ति – अच्छा, अहं प्रत्यय जो हुआ है वह व्यापाररहित है या व्यापारसहित है। मैं जानता हूं इसमें वह 'मैं' व्यापारसहित हूँ या व्यापाररहित हूं। व्यापार किए बिना यदि ज्ञानपदार्थका ग्रहण करने लगे तो यों क्यों लोप नहीं होता कि पदार्थ ज्ञानका ग्राहक बन जाय। जैसे कि ज्ञान पदार्थका ज्ञाता बना हुआ है इसी प्रकार प्रकार पदार्थ ज्ञानका ज्ञाता बन जाय क्योंकि व्यापाररहित होकर इस मैंने पदार्थको जाननेवाला मान लिया। यदि कहो कि व्यापार वाला होकर जाना जाता है तो इस 'मैं' से वह व्यापार भिन्न है अथवा अभिन्न है! यदि अभिन्न है तो व्यापार भी ज्ञानस्वरूपमात्र रहा, कोई अलग चीज नहीं रही और फिर अंधका और व्यापार का अभेद भी नहीं कर सकते क्योंकि धर्म और धर्मीरूपसे इसमें भेद जाना जाता है। यदि कहो कि मैं उससे 'मैं' का व्यापार जुदा है तो सम्बन्ध क्या? जैसे एक देवदत्तके ज्ञानका और यज्ञदत्तके व्यापारका जब जुदापन है तो उनका सम्बन्ध कुछ बैठता है क्या? क्योंकि जुदे व्यापार के द्वारा इस 'मैं' का कोई उपकार नहीं बन सकता। यदि उपकार बन सका तो अनवस्था दोष हो जायगा क्योंकि उसके रचनेमें अन्य व्यापार की कल्पना करनी होगी इस कारण यह अहं प्रत्यय कि मैं पदार्थको जानता हूं यह न तो व्यापारसहित होकर बनता है और न व्यापाररहित होकर बनता इस कारण मैं कुछ अलग चीज नहीं, पदार्थ कुछ अलग चीज नहीं किन्तु सारा विश्व एक ज्ञानमात्र है। इस अहंको जिसे कहते हो मैं जानता हूँ यदि निराकार मानते हो तो इसमें फिर प्रति-नियत विषयकी व्यवस्था न बन सकेगी अर्थात् ज्ञानका कुछ आकार न आया, ज्ञान निराकार ही रहा तो फिर यह कैसे कह सकेंगे कि मैं घटको जानता हूं। जब ज्ञानमें पदार्थका कोई आकार ही प्रकाशित नहीं है तो कैसे कह सकेंगे कि अब मैं पटको जान रहा हूं। पहिले मैं घटको जानता था, यह व्यवस्था नहीं बन सकती। यदि कहो कि यह ज्ञान यह मैं साकार रहा करता हूँ इसमें पदार्थोंकी व्यवस्था बनती तो फिर ज्ञान ही साकार हो गया। तब फिर इन पदार्थोंकी कल्पना करनेसे क्या लाभ है? वह तो एक साकारज्ञानसे ही सारी व्यवस्था बन जायगी। इस प्रकार ज्ञानाद्वैतवादी इन बाह्य पदार्थोंका लोप करनेके लिए और बाह्य पदार्थोंके जानने वाला मैं ज्ञानवान जुदा पदार्थ हूं इसको मिटानेके लिए मैंके ज्ञानमें ही प्रश्न किये जा रहा है कि मैं क्या गृहीत होकर जाना जाता हूं या अगृहीत होकर जाना जाता हूँ। निराकार होकर, साकार होकर, व्यापार सहित होकर या निर्व्यापार होकर आदि विकल्पोंको उठाकर उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खण्डन करनेका यत्न कर रहा है।

ग्राह्य ग्राहकमें समयकी भिन्नता व अभिन्नताका विकल्प करके शंकाकार द्वारा दोषापत्ति—यदि यह कहो कि यह अहं प्रत्यय मैं का ज्ञान जिस पदार्थको जानता है उस पदार्थसे भिन्न समयमें होता है तो भाई जब पदार्थका समय तो भिन्न है और मैं का समय भिन्न है तो इस मैं ने पदार्थको कैसे जाना ? यदि ज्ञान अपने समयमें अविद्यमान अर्थको भी जानने लगे तो ये सभीके सभी ज्ञान सारे विश्वको जानने लगेंगे। तो यह मैं भिन्नकालवर्ती पदार्थको जान नहीं सकता। यदि कहो कि एक समयमें रहने वाले ही पदार्थको हम जानते हैं तो समान समयमें रहने वाले पदार्थ हैं ना ये। और, उस ही समयमें रहने वाला मैं हूँ, ज्ञान हो तो इस ज्ञानका और इन ज्ञेयोंका कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा अर्थात् न तो उत्पत्तिका सम्बन्ध रहा और न कोई सम्बन्ध रहा। एक साथ हों कुछ तो उनमें यह कैसे कह सकते कि इसने इसको पैदा किया। जैसे बछड़ेके दो सीग एक साथ उत्पन्न होते हैं दायां बांया, तो उनमें क्या यह सम्बन्ध बनता है कि दाईं सींगने बाई सींगको पैदा किया और बांई सींगने दांई सींग को पैदा किया ? सम्बन्ध तो नहीं बनता। इसीतरह यह मैं जो जान रहा हूं यह ज्ञान और यह पदार्थ यदि एक ही समयमें रह रहे हैं तो यह सम्बन्ध नहीं बन सकता कि मैं तो ग्राहक हूँ और ये पदार्थ ग्राह्य हैं। मैं तो ज्ञान उत्पन्न करने वाला हूँ और ये पदार्थ ज्ञेय बनाये जा रहे हैं। समान काल हो तो पदार्थका और ज्ञानका यह भेद नहीं बन सकता है अन्यथा यह पदार्थ ज्ञानका ग्राहक बन जाय। दो सींग एक साथ पैदा हों उनमें एक दूसरेका उत्पादक है यह सिद्ध नहीं बनता और फिर भी जबरदस्ती कुछ सिद्ध करें जैसा कि दाहिनी सींगने बांई सींगको और बांई सींगने दांई सींगको उत्पन्न किया तो क्या हम यह न कह सकेंगे कि न दाहिनी सींगने बांईको उत्पन्न किया और न बांईने दाहिनीको उत्पन्न किया। इसीतरह यह पदार्थ और पदार्थोंको जानने वाला यह ज्ञान यदि दोनों एक समयमें हैं तो प्रथम तो यह बात नहीं बन सकती कि मैं तो ज्ञान जनक हूँ और इन पर पदार्थोंका ज्ञान करता हूँ फिर भी मानोगे ऐसी उत्पादकता का सम्बन्ध तो हम यों उल्टा कह बैठेंगे कि यह पदार्थ तो ज्ञान करता है और मैं जान जाता हूँ तो यह भी व्यवस्था न बन सकी।

पदार्थमें ग्राह्यता व ज्ञानमें ग्राहकताकी सिद्धिका शङ्काकार द्वारा निराकरण—यहाँ ज्ञानाद्वैतवादी कहते जा रहे हैं, यह बहुत लम्बे समय तक ध्यानमें रखना होगा कि इस समय जैन आदिकने जो निराकरण किया था उसका खण्डन करनेके लिए उनके विरुद्ध कहते जा रहे हैं कि पदार्थ ये सब कुछ चीजें नहीं हैं, केवल ज्ञानमात्र ही तत्त्व है, इसका फिर विश्लेषण इतनी बात पूरी होनेपर की जायगी। शायद जैन आदिक यह कहें कि पदार्थमें तो ग्राह्यताकी प्रतीति होती है इस कारण पदार्थ ग्राह्य हैं, ज्ञान ग्राह्य नहीं हैं। समान कालमें होनेपर भी पदार्थ ग्राह्य होते हैं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान ग्राह्य नहीं, ज्ञान तो ग्राहक है अर्थात् ज्ञान करने वाला है, जानने वाला है यह बात भी नहीं बन स ती क्योंकि पदार्थमें एक उस शैलीको छोड़कर अन्य कुछ प्रतीत नहीं होता कि यह पदार्थ ग्राह्य है। यदि स्वरूप ग्राह्य बना लोगे तो ज्ञानमें भी ग्राह्य बन जाय। यदि यह कहो कि पदार्थ तो जड़ है इस कारण ज्ञानका ग्राहक नहीं बनता, ज्ञान ही ग्राहक बनता है तो ये पदार्थ जड़ क्यों हैं यह बतलावो ? यदि यह कहोगे कि पदार्थ ज्ञानके ग्राहक न ीं इसलि ए जड़ हैं तो इसमें तो इतरेतराश्रय दोष हो गया। न यह सिद्ध होगा कि ये पदार्थ जड़ सहित हैं औ र न यह सिद्ध होगा कि पदार्थका ग्राहक ज्ञान है तो इसे अन्योन्याश्रय दोष कहते हैं। जैसे कोई एक ताला ऐसा होता है कि जरासा दबा देनेसे बन्द हो जाता है। उस तालाकी चाबी सन्दूकमें बन्द हो जाय और ताला बादमें बन्द कर दिया जाय तो भला बतलावो कैसे ताला खुले ? ताला खुले तो चाबी निकले और चाबी हो तो ताला खुले। अब वहाँ वह विवश होकर बैठ जाता है, इसे कहते हैं इतरेतराश्रयदोष। तो यहाँ जो यह व्यवस्था बनायी जैन आदिकने कि पदार्थ तो जड़ हैं इसलिए ज्ञानका ग्राहक नहीं होता। तो इसमें ऐसा ही इतरेतराश्रय दोष होता कि पदार्थ का जड़पना सिद्ध हो तो पदार्थ ज्ञानके ग्राहक नहीं हैं यह सिद्ध यह सिद्ध होगा। पदार्थ ज्ञानके ग्राहक नहीं हैं यह दृष्टि बने तो फिर जड़ है यह सिद्ध होगा।

जानन क्रियासे पदार्थज्ञान बनानेकी व्यवस्था में शंकाकार द्वारा दोषापत्ति—यदि यह कहोगे कि ज्ञान तो जानन क्रियाका कारण है। जानन है इस कारण ज्ञान ही पदार्थका ग्राहक है तो यह बतावो कि वह जो गृहीत है, जाननक्रिया है वह पदार्थसे भिन्न है या अभिन्न है। यदि पदार्थसे भिन्न है वह जाननक्रिया तो इस जानन कार्यने पदार्थका क्या किया ? कुछ भी नहीं किया। फिर जाननक्रियाके कारण पदार्थ का ग्रहण कैसे हो गया क्योंकि जाननकी जो क्रिया है, काम है वह भिन्न है। और, ये पदार्थ भिन्न हैं तो सम्बन्ध ही क्या रहा ? यदि यह कहो कि यह जानन क्रिया इस पदार्थकी है इसमें सम्बन्ध बन जायगा तो बन ही नहीं सकता क्योंकि अत्यन्त भिन्न है। और, भिन्न होनेपर भी जानन क्रिया उसे जानने लगे तो जानन क्रिया भी दूसरी जाननक्रियाको जान जायगी। तब यों अनवस्था दोष होगा यदि यह कहोगे कि पदार्थ की जाननक्रिया पदार्थसे भिन्न है तो जाननक्रियामें पदार्थ ही क्या गया ? जानन क्या हुआ ? ज्ञानका कार्य और कुछ नहीं बना। सब कुछ एक ज्ञानमात्र है। उस पदार्थको जानता हूँ ऐसा जो सबका बोध हो रहा है वह सब भ्रम है। वहाँ कुछ भी तत्त्व नहीं रहा। केवल ज्ञान ही ज्ञानस्वरूप है, ये पदार्थ कुछ भी नहीं हैं।

गृहीतिका अनिश्चय दिखाकर शंकाकार द्वारा ज्ञान व पदार्थोंके द्वैत का विरोध—यदि यह कहो कि जड़ पदार्थोंके उपादानसे जड़ अर्थोंकी उत्पत्ति हो रही है इससे जाननक्रियामें दोष नहीं है तो यह बतावो कि वह पूर्व अर्थ क्या बिना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाने ही उपादान बन गया या जाने हुए बन गया ? बिना जाने हुए उपादान बन जाय तो इसमें तो बड़ी आपत्ति खड़ी हो जायगी। जैसे कि गधेके सींगसे घड़ा बन उठे क्योंकि बिना जाने हुए किसी भी पदार्थसे जब कुछ बनने लगा तो जो सर्वथा असत् है वह कभी जाना ही नहीं जा सकता। उससे भी कुछ कार्य बनने लगे न घड़ा सही, उस सींगमें सींगके ही कार्य बनने लगें तो अज्ञात होकर पदार्थके कार्यकी उत्पत्तिका कारण तो बना नहीं! यदि कहो कि पदार्थ ज्ञात होकर अन्य कार्यकी उत्पत्तिका कारण होता है यो यह बतावो कि वे दोनों एक कालमें हैं या भिन्न कालमें हैं ? भिन्न कालमें हैं तो ग्रहण क्या हुआ ? कार्य क्या बना और एक कालसे है तो कारणकार्य क्या बना ? यदि जुदे जुदे समयमें कारण और कार्य रहे तो कारणकार्य क्या ? तो गृहीति अग्रहीत हो तो निश्चय कैसे हो, अन्य ज्ञानसे गृहीतिका ग्रहण हो तो अनवस्था दोष होता है तो निश्चय कैसे बनेगा ? प्रयोजन यह है कि ये जो जैनादिक कहते हैं कि घट पट आदिक पदार्थोंको जानता हूं इस शैलीसे ज्ञान हुआ करता है सबका और इस शैलीमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मैं कोई जुदा हूँ और ये पदार्थ कुछ जुदे हैं यों पदार्थ हैं सब और मैं भी हूँ ऐसा सिद्ध करना चाहते हैं वह सिद्ध नहीं होता। केवल ज्ञानमात्र ही तत्त्व है।

सर्व विज्ञान विश्वको स्वप्नवत् बताकर शंकाकार द्वारा विज्ञप्तिमात्र तत्त्वकी साधना— जैसे स्वप्नमें कुछ दिखता है तो वहाँ कहाँ पदार्थ हैं ? वह सब एक ज्ञानका ही फैलाव है। तालाब दिखे, जहाज दिखे, मगर दिखे मुझे मगर खा रहा है, में जहाजपर चढ़ रहा हूँ, ऐसा दिखे तो वहाँ भी कुछ है क्या ? वह सब एक ज्ञान का ही तो फैलाव है। सब कल्पनामात्र है। तो जैसे स्वप्नमें ये पदार्थ कुछ नहीं हैं ऐसे ही जगती हुई हालतमें ये जो अलमारी भींट आदिक पदार्थ दिख रहे हैं ये भी कुछ नहीं हैं। यदि कहो कि इन्हें छूकर दिखादें कि हैं पदार्थ कि नहीं तो ऐसी बात तो स्वप्नमें भी मालूम पड़ती है। स्वप्नमें तो ऐसे ऐसे काम कर डाले जाते हैं कि जो जागते हुएमें भी नहीं किए जा सकते। एक पहाड़से उड़कर दूसरेमें पहुँच गए ऐसा स्वप्नमें दिखता है भला इसे जगती हुई हालतमें भी कोई करके दिखा दे। जैसे यहाँ चीजें हल्की भारी आदिका ज्ञान हो जाता है। तो जैसे स्वप्नमें देखी हुई बातें केवल भ्रम मात्र हैं ऐसे ही जगती हुई हालतमें जो कुछ दिखता है वह कुछ नहीं है, केवल एक भ्रममात्र है। ऐसा ज्ञानाद्वैतवादी समस्त विश्वको एक ज्ञानमात्र सिद्ध करना चाहता है।

शंकाकार द्वारा ज्ञानाद्वैतकी समस्या रखनेका प्रसङ्ग—केवल ज्ञान ही तत्त्व है, यह बात ज्ञानाद्वैतवादी इस लिये सिद्ध कर रहे हैं कि इस ग्रन्थमें जो प्रारम्भमें प्रमाणका स्वरूप कहा गया था—प्रमाण वह है जो स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय कराये; तो यह अपूर्व अर्थका हैं कहाँ जिसका निर्णय कराने वाले ज्ञानको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तुम प्रमाण कहते हो ? ये सारे पदार्थ जो दिख रहे हैं ये अपूर्व अर्थ बताये जा रहे हैं सो सब भ्रमकी चीज है, जहाँ कुछ तत्त्व ही नहीं है, सब ज्ञानका आकार ही सर्वत्र फैल रहा है ऐसे प्रमाणके स्वरूपको बिगाड़नेके लिए ज्ञानाद्वैतवादी एक ज्ञानमात्र तत्त्व रख रहे हैं। देखो यदि शंकाकार जैसा हृदय बनाकर शंकाकारकी बात सुनी जाय तो बात भीतर यों जचने लगती है कि ये दिख कहाँ रहे हैं। इसकी बातका आचार्यदेव उत्तर देंगे किन्तु यहाँ प्रश्नका मर्म तो समझ लेना चाहिये। कोई प्रश्न ऐसा ही हो जिसमें कुछ दम नहीं है तो उसका स्वरूप भी व्यर्थ है और निराकारण करना भी व्यर्थ है। यहाँ यह कह रहे कि यह सारा विश्व एक ज्ञानमात्र है। बाह्य वैभव कुछ नहीं है इसलिये दुनियामें निर्णायक ज्ञान प्रमाण नहीं होता किन्तु ज्ञानका ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण होता है।

ज्ञान, अर्थ व गृहीतिकी स्वतन्त्रता बताकर शङ्काकार द्वारा द्वैतसिद्धि का विराधन — ज्ञानाद्वैतवादी पदार्थोंकी सत्ता नहीं मानते। वे केवल समस्त विश्वको ज्ञानमात्र तत्व ठहराते हैं। इस मंतव्यके निराकरणमें जैन आदिकने जो पदार्थोंका ग्रहण किया है ऐसा सिद्ध करना चाहते थे और प्रसङ्गवश यह उक्ति दी थी कि जानन क्रियाका कारण होनेसे ज्ञान पदार्थका ग्राहक होता है तो इसपर ज्ञानाद्वैतवादी यह आपत्ति दे रहे हैं कि वह गृहीति अर्थात् जाननकी क्रिया बिना ग्रहण किए हुए तो ठहर ही नहीं सकती, उसकी भी तो जानकारी होना जरूरी है। वह यदि किसी अन्य ज्ञानसे जाना जा रहा है तो अन्य ज्ञानमें भी जानन क्रिया है, उसका ज्ञान अन्य ज्ञानसे होगा। तो अनवस्था दोष आता है इस कारण ये सब चीजें अर्थ हैं, गृहीति हैं, ये सब स्वतन्त्र स्वतन्त्र हो जायेंगे और जब स्वतन्त्र हो गए, दूसरेसे अत्यन्त भिन्न हैं तो ज्ञान पदार्थको जानता है यह कैसे सिद्ध होगा ? अतः पर पदार्थोंसे किसीका अवभासन होना यह सिद्ध नहीं होता, अर्थात् ज्ञान ज्ञान ही है, सब ज्ञानका आकार है, अन्य पदार्थ आदिक कुछ नहीं हैं।

कर्ता, कर्म, करण क्रियाकी प्रतीतिमें शङ्काकार द्वारा द्विचन्द्रवत् भ्रमका आरोप — ज्ञानाद्वैतवादी यहाँ अपना पक्ष रखते जा रहे हैं, यदि कोई यह कहे कि मैं पदार्थको आँखोंसे जानता हूँ, ऐसा ही तो लोगोंको निर्णय होता, इसी शैलीसे वह जानना होता है ना तो इसमें कर्म, कर्ता, क्रिया, करण ये चार चीजें प्रतीतिमें आ रही हैं। मैं जानता हूँ तो मैं कर्ता हुआ, जानता हूँ क्रिया हुआ, पदार्थोंको जानता हूँ तो पदार्थ कर्म हुए, आँखोंके द्वारा जानता हूँ तो आंखें करण हुईं। यों भिन्न भिन्न चार चीजें तो रोकी ही नहीं जा सकती। यदि ज्ञानमात्र ही तत्त्व माना जाय तो यह चारकी प्रतीति क्यों होती ऐसा यदि कोई जैन आदिक कहें तो वो वह बात भी मिथ्या है, क्योंकि जैसे जिसको आंखोंमें तिमिर रोग हुआ है उसे जैसे दो चन्द्रमा दिखते हैं तो क्या दो चन्द्रमा हैं ? हैं तो नहीं। न होनेपर भी जैसे दिखते हैं ऐसे ही विश्वमें कर्ता,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्म, करण, क्रिया ये कुछ नहीं हैं। केवल ज्ञानमात्र तत्त्व है मगर दीखा करता है। तो जैसे दो चन्द्रमाका अभाव होनेपर भी दो चन्द्र दिखते हैं ऐसे ही पदार्थोंका अभाव होनेपर भी कर्ता, कर्म, करण, क्रिया आदिक प्रतिभासमें आते हैं। वहाँपर यह ज्ञान ही इन चारके आकाररूपमें प्रकट हुआ है। कर्म आदिक अविद्यमान हैं। हैं नहीं य चार, पर अनादि कालसे अविद्याकी वासना लगी है इस कारण ये भिन्न-भिन्न सब आकार नजर आते हैं इसीप्रकार इस बीचमें ज्ञानाद्वैतवादीने अपना मन्तव्य रखा कि ज्ञानमात्र ही तत्त्व है।

अहंप्रत्ययमें शंकाकार द्वारा दिये गये गृहीत अगृहीत विकल्पोंका समाधान—अब जिन-जिन युक्तियोंसे ज्ञानमात्र तत्त्वकी सिद्धि और पदार्थोंका प्रतिषेध किया उन सब युक्तियोंपर क्रमसे मीमांसा की जायगी। आचार्यदेव कहते हैं — देखो जो तुमने यह आपत्त दी थी कि अहंप्रत्यय जो होता है लोगोंको, मैं जानता हूँ यों तो मैं केछ अलग हुआ ना और पदाथ कुछ अयग हैं इसप्रकार अहं-अहं रूपसे सबका अनुभव होता है तो यह बतलावो कि वह गृहीत है या अनुगृहीत है? ऐसा विकल्प बताकर जो अहं प्रत्ययका खण्डन किया था उस सम्बन्धमें समाधान सुनिये — अहं यह ग्रहणमें आकर ही पदार्थको जानता है और इस अहंका ग्रसण जानन अपने आप होता है। जैसे कोई मनुष्य जानता है कि मैं खम्भेको जान रहा हूँ तो उसे जो मैं का बोध हुआ वह भी एक साथ तुरन्त अपने आप हुआ। कहीं यह नहीं है कि उस अहं के जाननेके लिए हमें दूसरा ज्ञान बनाना पड़े। जैसे दीपक पर पदार्थोंको प्रकाशित करता है पर स्वयं भी प्रकाशित है। कहीं ऐसा नहीं होता कि दीपकको ढूंढनेके लिए या उसे उजेलेमें करनेके लिए किसी दूसरे दीपककी जरूरत पड़े। ऐसे ही यह अहं प्रत्यय गृहीत होकर ही पदार्थका ग्राहक होता है और उस अहंका ग्रहण स्वतः ही हो जाया करता है और स्वतः इस अहंका ग्रहण होनेपर यह आपत्ति नहीं दी जा सकती कि स्वरूपमात्रके प्रकाशमें निमग्न हो गया अतएव बाह्य पदार्थोंका प्रकाश नहीं कर सका। अरे यह विज्ञान दीपककी तरह स्वपर प्रकाश शब्द वाला है जो खुद प्रकाश मान नहीं है वह वह दूसरेका भी प्रकाशकरनेका कारण नहीं बनता। क्या कोई बल्ब बैट्री दीपक या मेघोंकी बिजली कुछ भी चीज ऐसी है जो दूसरेको प्रकाशित करता है और खुदको खुदको नहीं प्रकाशित करता? दीपकमें स्वपर प्रकाशका स्वभाव तो पाया ही जाता है, ऐसे ही विज्ञानमें स्व और पर पदार्थोंके जाननेका स्वभाव है।

अहं प्रत्ययमें शंकाकार द्वारा दिये गये सव्यापार व निर्व्यापार विकल्पोंका समाधान—ज्ञानाद्वैतवादी अहं प्रत्ययमें यह निर्व्यापार है या व्यापार-सहित है ऐसे विकल्पोंको करके अहं प्रत्ययको मिटाना चाहते थे यह भी उनका कथन मात्र है, क्योंकि स्व और परपदार्थका जानन करना, प्रकाशन करना इस स्वभावको छोड़कर ज्ञानका और स्व परके प्रकाश करनेमें अन्य व्यापार नहीं है। अर्थात् इस अहं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का, ज्ञानका यह व्यापार है कि खुद प्रकाशित हो और दूसरेका प्रकाश करे । कोई इससे भिन्न व्यापारकी बात नहीं है । और, फिर यदि ये पदार्थ ही ज्ञानरूप कहलायें, पदार्थ अलग कुछ न हों ज्ञानसे तो जब ये पदार्थ ही स्वयं ज्ञानके आकार मान लिए जायें तो पदार्थमें भिड़ना, छिड़ना, टक्कर लगाना ये सब बातें न होना चाहिए, क्योंकि पदार्थ तो सब मान लिया ज्ञानरूप तो फिर यहांसे कोई कोई छिड़ता है खम्भे से क्यों टक्कर लगती है ? यह तो ज्ञानरूप है । कहीं ज्ञानसे भी माथा भिड़ा करता है, कहीं ज्ञानसे भी चोट लगा करती है । जैसे छतसे गिर गए तो जमीनकी चोट लग गई, क्या ऐसे ज्ञानसे भी शरीरकी हड्डी टूटती है ? तो इन पदार्थोंको ज्ञानरूप मान लेनेपर इनसे छिड़ना, रूप आदिक भान होना ये सब नहीं घटित होते । और, यदि एक ज्ञानरूपसे निश्चय किए हुए इन पदार्थोंका ही नाम हम ज्ञान धरदें तो नाम धरने में हमें कोई आपत्ति नहीं पर स्वरूप तो जिसका जैसा है वैसा ही मान लेना चाहिए । कहीं नाम धरने मात्रसे पदार्थके जो धर्म हैं इन पुद्गलोंके भौतिक पदार्थोंके जो धर्म हैं छिदना, भिड़ना, टक्कर लगना, रूप आदिकका भान होना यह धर्म तो कहीं नष्ट न हो जायगा । जैसे किसी मूर्ख पुरुषका कोई बुद्धिप्रसाद नाम धरदे तो कहीं मूर्खता तो न छोड़ देगा । जो पदार्थ जिस स्वभावको लिये हुए है उसमें वह ही है नाम चाहे कुछ रख दो ।

स्वभावभेदसे ज्ञानमय पदार्थ व अन्य पदार्थोंकी व्यक्त भिन्नता—देखो इन पदार्थोंमें ज्ञानरूपताका स्वभाव नहीं पड़ा है ज्ञान अलग वस्तु है और पदार्थ अलग वस्तु है । ज्ञान तो अन्तः प्रतिभासमान है और वह पदार्थको विषय रूपसे जान कर अपने आपमें प्रतिभासमान होता है और अपने आपके ही द्वारा वह वेद्य है । लेकिन ये बाह्य पदार्थ, इनमें अन्य अन्य प्रकारका स्वभाव मिलता है जैसे भिड़ना, टक्कर होना, रूप आदिक होना और अपनेसे भिन्न अन्य तत्त्वके द्वारा जाननेमें आना, पदार्थों से भिन्न है आत्मतत्त्व । उसके एक ज्ञानरूप परिणमन द्वारा ये पदार्थ जाननेमें आया करते हैं । इस कारण बाह्य पदार्थका स्वरूप उनमें है, ज्ञानमें या गुणगुणीके अभेदसे आत्मामें है अतएव ये सब भिन्न भिन्न पदार्थ हैं । एक ज्ञानमात्र ही समस्त विश्व नहीं है और ऐसा माने बिना, पदार्थ माने बिना और ज्ञानको स्वतंत्र माने बिना और फिर ज्ञानके द्वारा पदार्थोंका प्रतिभास हुआ करता है ऐसा स्वीकार किए बिना पदार्थकी व्यवस्था अन्य किसी भी प्रकार नहीं हो सकती है । और भी ।

अहं प्रत्ययमें शङ्काकार द्वारा दिये गये संस्कार व निराकार विकल्पों का समाधान—जो ज्ञानाद्वैतवादीने अहं प्रत्ययके विषयमें विकल्प उठाया था कि यह अहं रूपसे उठा हुआ ज्ञान निराकार है या साकार है यह भी उनका एक प्रलाप मात्र है । अरे ज्ञान साकार नहीं हुआ करता अर्थात् जो इन पदार्थोंका आकार है, जो ढंग है उस ही रूप ज्ञान नहीं हुआ करता । ज्ञान तो निराकार है और निराकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रत्ययसे ही भिन्न भिन्न पदार्थोंके जाननेका नियम बन सकता है। यहाँ ज्ञानको निराकार कहा है तो यह दार्शनिक क्षेत्रमें जहाँ कि ज्ञानाद्वैतवादी इन पदार्थोंको ही ज्ञानका आकार समझते हैं उसका प्रतिषेध करनेके लिए निराकार कहा है, किन्तु स्याद्वाद सिद्धान्तमें जो ज्ञानको साकार कहा और दर्शनको निराकार कहा, उसकी संज्ञा इससे जुदा है। उसका तात्पर्य यह है कि ज्ञानमें जाननेका विकल्प हुआ करता है, पर दर्शनमें विकल्प नहीं हुआ करता है विकल्पमात्रका ही नाम आकार है, और जहाँ अर्थ ग्रहण नहीं है, किन्तु प्रतिभास है उसका नाम निराकार है। यहाँ ज्ञान इन पदार्थोंरूप नहीं हो जाता ऐसा बतानेके लिए ज्ञानको निराकार सिद्ध किया है। निराकार ज्ञानसे विषयोंकी विज्ञप्तिकी व्यवस्था बनती है अमुक पदार्थको ज्ञानने जाना, अमुकको जाना ऐसी व्यवस्था निराकार ज्ञानसे ही सम्भव है।

शंकाकार द्वारा उठाये गये ज्ञानके विषयमें भिन्नकाल व समकालके विकल्पोंका समाधान जो अहं प्रत्ययके सम्बन्धमें यह विकल्प उठाया था कि मैं पदार्थोंको जानता हूँ इससे जो अहंका बोध होता तो यह अहं और वह पदार्थ ये क्या भिन्न कालमें हैं या एक ही कालमें हैं? भिन्न कालसे ज्ञान जाने क्या? और, एक कालमें ही रहने वाला मैं यह ज्ञाता हूं, यह ज्ञेय है, यह भेद बने कैसे? ऐसे विकल्प उठाकर जो अहं प्रत्ययका निषेध किया था वह भी सारहीन बात है क्योंकि हम पदार्थोंको या ज्ञानको क्षणिक नहीं मानते। जो ज्ञानको क्षणिक माने उसके लिए यह दोष आ सकता है कि पदार्थ तो हुआ किसी कालमें, ज्ञान हुआ किसी कालमें। तो ज्ञान पदार्थको कैसे जान ले? जो क्षणिक माने उसके ही यह दोष हो सकता है कि ज्ञानके कालमें पदार्थ न रहा और पदार्थके कालमें ज्ञान न रहा फिर इन दोनोंमें ग्राह्य ग्राहक भाव कैसे बने? अर्थात् ज्ञेय ज्ञायक भाव न बन सके यह दोष क्षणिकवादियोंमें ही बन सकेगा।

भिन्नकालस्थ अर्थोंके जाननेमें भी अनापत्ति – ज्ञानाद्वैतवादीने जो यह बात कही थी कि ज्ञान यदि अविद्यमानको जान ले, क्योंकि पदार्थका काल भिन्न है और ज्ञानका काल भिन्न है, तो ज्ञान यदि अवर्तमान पदार्थको जान ले तो फिर समस्त प्राणी सर्वज्ञ बन बैठेंगे क्योंकि ज्ञानका काम तो हो गया कि अतीतकालको भी जानले तो सारे ज्ञान अतीतकालसे जान उठे तो सारा लोक सर्वज्ञ बन जायगा। यह आपत्ति देना भी अयुक्त है क्योंकि भिन्नकाल और समकालकी वजहसे ज्ञान ज्ञेयको नहीं जानता किन्तु ज्ञानमें योग्यता है, वह योग्य अर्थको जानता है। चाहे अतीतकालका कोई अर्थ हो, वर्तमानका हो, भविष्यका हो, जिसके ज्ञानमें जितनी योग्यता बन गई है, प्रतिबंधका उपाय होनेपर; ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेपर ज्ञानमें जिसकी योग्यता है उसके अनुसार पदार्थोंको जानता है, चाहे पदार्थ भिन्न कालेमें हों चाहे समान कालमें हों।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुमानप्रमाणवादमें भी भूत भविष्यत् पदार्थोंके ज्ञानकी सिद्धि— यह बात क्षणिकवादके सिद्धान्तसे भी सिद्ध है कि ज्ञान अतीत कालको भी जानता है क्योंकि अनुमान प्रमाणमें जहाँ भेद विस्तार किया गया है वहाँ पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भी बताता गया है। क्षणिकवादी भी दो प्रमाण माना करते हैं—एक प्रत्यक्ष और एक अनुमान। अनुमानमें जहाँ पूर्वचर और उत्तरचरकी बात आती है वहाँ भिन्न काल का ज्ञान सिद्ध हो जाता है। पूर्वचरका अर्थ यह है कि जैसे कोई यहाँ अनुमान बताता है कि कल शुक्रवार होगा क्योंकि आज बृहस्पतिवार है तो हेतु सत् है, क्योंकि यह हेतु पूर्वचर है, साध्यसे पहिले समयमें पाया जाता है। तो साध्यसे पहिले समयमें पाए गए साधनसे ज्ञान करना पूर्वचर हेतु है। तो पूर्वचर हेतु अनागतकी बात जानी गयी। उत्तरचरमें यों समझ लो कि कल बुधवार था क्योकि आज गुरुवार है। यहाँ अतीत का साध्य जाना गया। तो जैसे पूर्वचर और उत्तरचर हेतुवोंसे उत्पन्न हुए भिन्नकालमें रहने वाले प्रतिनियत साध्यकी गृहीति हो जाती है इसीप्रकार सभी ज्ञानोंमें ऐसी योग्यता है कि जो ज्ञान जिस योग्य है वह अपनी योग्यताके अनुसार बाह्य पदार्थोंका ग्रहण कर लेता है। चाहे वह भिन्न कालमें रहने वाला हो अथवा समान कालमें रहने वाला हो।

भिन्नकालीन अर्थका ज्ञान न माननेपर क्षणिकवादमें अनिष्ट प्रसंग— भिन्न कालके अर्थका ज्ञान नहीं हो पाता है ऐसा हठ माननेपर तो तुम अनुमानको भी सिद्ध नहीं कर सकते। तब अनुमान प्रमाणका भी उच्छेद हो जायगा। क्षणिकवादमें केवल दो प्रमाण माने गए हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। यदि यह हठ आ जाय कि ज्ञान भिन्न पदार्थको नहीं जानता तो इससे अनुमानका उच्छेद होगा सो देखिये साधक से साध्यका ज्ञान होनेका नाम अनुमान है। साधन हुआ करता है अनुमानका क्षणिक-वादमें रूप। तो विरूप लिंगसे साध्यका ज्ञान होना अनुमान है। तो जैसे–जैसे तुमने जैन आदिकके प्रतिज्ञानसे अर्थका ज्ञान होनेमें प्रश्नरूप विकल्प किया था, हू—बहू वैसे ही सारे विकल्प इस अनुमान प्रमाणके विरुद्ध भी उठाये जा सकते हैं। भला बतलावो तो सही कि वह साधन जो साध्यको सिद्ध कर रहा है, वह अवभासमान होने वाला लिंग क्या भिन्न कालमें साध्यका जनक है या समान कालमें ? यदि साधन भिन्न काल के साध्यका जनक बन जाय तो एक ही अवभासमान साधन समस्त साध्योंका जनक बन जाय। एक ही साधनसे दुनियाके सारे अनुमान ज्ञान हो जायेंगे, यह सब उसका जवाब दिया जा रहा है। जैसे कि ज्ञानाद्वैतवादीका कहना था कि फिर तो एक ज्ञान से ही सारे पदार्थोंका ज्ञान बन बैठेगा। यदि यह कहो कि भिन्न कालमें तो जरूर है साधन और साध्य। जिस हेतुसे जिस पदार्थका ज्ञान करना है वे दोनों भिन्न कालमें तो भले ही हैं फिर भी उनमें कोई तो साधन कहलाता है और कोई साध्य। उसमें योग्य साधन ही अनुमानका जनक बनता है। ऐसा नहीं है कि एक साधन समस्त अनु-मानका जनक बन जाय तो यह बात तो हमारे यहाँ भी मान लें कि ज्ञानकी विशेषता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न होनेपर भी अथवा भिन्न कालपनेकी विशेषता नहीं है, ज्ञान जुदे कालमें है, पदार्थ जुदे कालमें है तो भी किसीका ही तो नाम ज्ञान है और किसी ही अर्थका वह ग्रहण करने वाला है ऐसा यहाँ भी मान लो ।

भिन्नकालीन अर्थका ज्ञान करनेमें दिये गये दोषोंका अनुमान प्रमाण में भी प्रवेश—यदि यह कहो कि जो पदार्थ गुजर गये हैं, जो पदार्थ नष्ट हो गए हैं अथवा जो पदार्थ अभी उत्पन्न ही नहीं हुए याने भविष्यमें होंगे ऐसे पदार्थोंमें लगा हुआ ज्ञान दूषित हो जायगा । तो तुम्हारे यहाँ भी यह दोष कहा जा सकता है कि जो साधन नष्ट हो गया या जो साधन अभी हुआ ही नहीं है उस साधनके द्वारा उत्पन्न कराया गया अनुमान भी हेतुरहित क्यों न हो जायगा ? इसके उत्तरमें यदि यह कहें कि अपने ही समयमें साध्य साधन अपने स्वरूपमें अनुमानका जनक है तो यह बात हमारे ज्ञान और कार्यके प्रसङ्गमें है । अपने ही समयमें रहने वाले पदार्थ ज्ञानके आश्रय भूत बन जाते है । यदि ऐसी आपत्ति दोगे तो भिन्न कालमें रहने वाला साधन अनुमानका जनक नहीं बन सकता । फिर जो तुमने प्रमाण माना है अनुमानको वह सिद्ध न हो सकेगा ।

समकालीन अर्थके ज्ञानमें दिये गये दोषोंका अनुमान प्रमाणमें भी प्रवेश—समकालमें रहे यदि साधन और साध्य तो भी वह अनुमानको उत्पन्न न कर सकेगा । जैसे कि तुमने ज्ञान और अर्थके सम्बन्धमें दोष दिया था कि जब ज्ञान और पदार्थ एक ही समयमें रह रहें हैं तो हम यह कैसे निर्णय करें कि ज्ञानने पदार्थको जाना ? हम यह कह बैठेंगे कि पदार्थने ज्ञानको जाना । जैसे कि एक ही बछड़ेके दो सींग हैं उनमें कोई यह कैसे कह सकता कि दाहिनी सींगने बांई सींगको पैदा किया और बांई सींगने दाहिनी सींगको पैदा किया ? यदि समान कालमें ज्ञान अर्थ है तो उनमें ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं बन सकता । तो यों तो तुम्हारे यहाँ भी यदि साधन और साध्य समान कालमें हैं तो साधनसे अनुमान नहीं बन सकता । जैसे पर्वतमें अग्नि है और धुवां भी उठ रहा है तो समान कालमें ही हैं ना दोनों । तो हम यह कैसे कह दें कि धुवांने अग्निका ज्ञान करा दिया ? हम यों कह बैठें कि अग्निने धुवांका ज्ञान कराया तो ये सब अटपट बातें तुम्हारे यहां भी उन विकल्पोंसे उत्पन्न होती हैं और फिर भी यदि यह मानोगे कि समान काल होनेपर भी साधनसे साध्यका ज्ञान होता है इसमें कोई विरोध नहीं है तो साध्यसे साधनका ज्ञान होता है, अनुमानसे हेतुका ज्ञान होता है यों कह बैठेंगे और फिर इन दोनोंका अन्योन्याश्रय दोष हो जायगा । जब अनुमान निश्चित् हो जायगा तब हेतुकी सिद्धि होगी जब हेतुकी सिद्धि होगी तब अनुमानकी सिद्धि होगी । तब तो एककी भी सिद्धि नहीं हो सकती । अन्योन्याश्रय दोषमें दोनोंमेंसे किसीकी सिद्धि नहीं होती । जैसे किसी बक्समें चाबी रखकर फिर बक्स बंद करके बिना चाबीके ही लग जाने वाले तालेको बन्द कर दिया तो अब तो सारा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

काम रुक गया। ताला खुले तो चाभी निकले और चाभी निकले तो ताला खुले। तो इसके मायने हैं कि दोनों ही काम नहीं हो सकते। न ताला खुल सके न चाभी निकल सके। तो इसी तरह दोनों ही बातें न बनेंगी। न हेतु सिद्ध होगा और न अनुमान सिद्ध होगा।

अनुमान और हेतुमें जन्यजनकता माननेकी भांति पदार्थ और ज्ञानमें भी ग्राह्य ग्राहकताकी सिद्धि—सायद यह कहो कि जन्य तो अनुमान ही होता है क्योंकि अनुमानमें ही जन्यताकी प्रतीति है अर्थात् साधनके द्वारा अनुमान ज्ञान बनाया जाता है। धुवाँ होनेसे इस पर्वतमें अग्नि है यह सिद्ध किया जाय तो यह साधन हुआ और जो सिद्ध किया जा रहा वह है सब अनुमान। तो साधन तो बना जनक याने अनुमानको उत्पन्न करने वाला और अनुमान हुआ जन्य। इस सम्बन्धमें जो यह आपत्ति दी जा रही थी कि इसमें जनक जन्य भाव नहीं बन सकता, समान काल होनेसे तो इसपर ज्ञानाद्वैतवादी यह कह रहे हैं कि भले ही समान कालमें हैं वे दोनों पर अन्य अनुमान ही है, क्योंकि सभी लोग समझते हैं कि साधनोंके द्वारा इस अनुमानको उत्पन्न किया गया है तो अर्थकी यहाँ सिद्धि नहीं हो पाती। क्योंकि अनुमानको छोड़कर पदार्थमें और कोई जन्यता नहीं मालूम होती है। स्वरूप ही जन्यता हो जाय यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि स्वरूप तो साधनमें भी मौजूद है सो साधनमें भी जन्यता बन जायगी। तो समानकाल होनेपर कोई पदार्थका जानने वाला नहीं बन सकता ऐसा कहोगे तो समान काल होनेपर साधन अनुमानको भी उत्पन्न नहीं कर सकता। ऐसा तुम्हारे यहाँ भी दोष आयगा।

जन्य जनकके अपने अपने स्वरूपकी भांति ग्राह्य ग्राहकमें भी अपने अपने स्वरूपकी सिद्धि—यदि यह कहो कि यद्यपि स्वरूप दोनोंमें है, अनुमानमें भी अनुमानका स्वरूप है तो स्वरूपकी अविशेषता होनेपर भी जन्यता तो अनुमानमें ही मिलेगी, साधनकी अपेक्षासे, किन्तु साधनमें अनुमानकी अपेक्षासे जन्यता न मिलेगी। यदि ऐसा यहाँ भी मान लें कि ज्ञान और पदार्थ इन दोनोंमें स्वरूप अपना अपना जुदा है पदार्थमें पदार्थका स्वरूप है, ज्ञानमें ज्ञानका स्वरूप हैं, स्वरूपकी अविशेषता होने पर ही ज्ञानकी अपेक्षासे पदार्थोंमें ही ग्राह्यता सिद्ध होती है किन्तु पदार्थोंकी अपेक्षासे ज्ञानमें ग्राह्यता नहीं बनती। तो ठीक ही है। ज्ञान ग्राहक है और ये सब पदार्थ ग्राह्य हैं। जानने वाला यह मैं ज्ञान हूँ और जाननेमें ये सब पदार्थ आ रहे हैं, सबकी सत्ता सिद्ध हो जाती है। ज्ञानमात्र ही तत्त्व है इसकी सिद्धि तो नहीं हो सकती। और ऐसा भी नहीं कह सकते कि उत्पत्तिका कारण होनेसे लिंग अर्थात् साधन अनुमानका उत्पादक है क्योंकि वह उत्पत्ति उस पदार्थसे भिन्न है या अभिन्न है ये दो प्रश्न किए जायें अर्थात् यह उत्पन्न अनुमानसे क्या जुदा है जिसका कारण साधन बनता है। यदि जुदा है तो साधनने अनुमानका कुछ नहीं किया, कोई उपयोग न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बन सका फिर भी अपकार मानोगे तो फिर यह दूसरे साधनसे हुआ ? यों अनवस्था दोष आयगा। तथा यह अनुमानकी उत्पत्ति है यह सम्बन्ध भी असिद्ध है क्योंकि कुछ उपकार ही नहीं है। इस कारण यह भी नहीं कह सकते कि साधन साधन कहलाता है। यदि अनुमानसे उत्पत्तिको अभिन्न मानोगे तो अनुमान ही साधन बन गया तब साधनने किया ही क्या, प्रयोजन यह है कि सीधीसी बात है कि ज्ञान भी अपना स्वरूप रखता है और विश्वके ये सारे पदार्थ भी अपना स्वरूप रखते हैं। ज्ञानका स्वरूप इस ढंगका है कि वह अपना भी ज्ञान करे और पर पदार्थोंका भी ज्ञान करे। और पर पदार्थोंमें ऐसी कला है अथवा ऐसी ज्ञानशक्ति है कि ये पदार्थ किसी न किसीके ज्ञानमें ज्ञात होते ही रहते हैं।

ज्ञानशक्तिके सम्बन्धमें ज्ञानाद्वैतवादीका प्रश्न—ज्ञानाद्वैतकी सिद्धिके लिए बाधा डालनेके अर्थ ज्ञानाद्वैतवादी पूछते हैं कि यह बतलावो कि ज्ञान जिस शक्तिके द्वारा अपने आपको जानता है क्या उस ही शक्तिके द्वारा अपनेको भी जानता और पदार्थोंको भी जानता। तब इस ज्ञान और पदार्थमें एकता ही सिद्ध हुई, क्योंकि ज्ञान और पदार्थ जुदे-जुदे होते तो एक स्वभावके द्वारा जाने न जाते। यदि एक स्वभावके द्वारा जाने जानेपर भी पदार्थ अनेक कहलाने लगें तो फिर एक नाम किसका रहेगा ? इससे उस एक ही शक्तिके द्वारा ज्ञान ज्ञान अपनेको भी जाने और पर पदार्थोंको भी जाने यह बात सम्भव नहीं है। यदि कहो कि ज्ञान जिस शक्तिसे अपने स्वरूपको जानता है उस शक्तिसे भिन्न अन्य शक्ति है जिस शक्तिके द्वारा पदार्थको जानता है। तो ऐसा कहनेपर ज्ञानमें दो स्वभाव आ गये। एक स्वभावके द्वारा तो ज्ञानने अपनेको जाना और अन्य स्वभावके द्वारा ज्ञानने पर पदार्थको जाना। और, यह भी बतलावो कि ज्ञानमें जो वे दो स्वभाव पड़े गए हैं उन दोनों स्वभावोंको जाननेके लिए यदि अन्य दो स्वभाव मानोगे तब तो अनवस्था दोष होगा। फिर उन दोनों स्वभावोंको जाननेके लिए फिर दो स्वभाव मानो। इस तरह कहीं भी टिकाव न होगा। इससे सीधा ही मान लेना चाहिए कि ज्ञान स्वरूपमात्रका ग्रहण करता है, पदार्थको ग्रहण नहीं करता। ज्ञानाद्वैतवादी यह सिद्ध कर रहे हैं ऐसी युक्ति देकर कि सब कुछ यह ज्ञान ही ज्ञान है, ज्ञान जाननेको ही जान रहा है। यह पदार्थ है, चौकी, भींट आदिक ये सब भ्रमकी बातें हैं। सिवाय ज्ञानके अन्य कुछ नहीं है, ऐसा ज्ञानाद्वैतवादीने अपना पक्ष रखा।

ज्ञानशक्ति विषयक ज्ञानाद्वैतवादीके प्रश्नका उत्तर—ज्ञानकी अर्थ क्रियाके स्वभावके प्रश्नके उत्तरमें आचार्यदेव कहते हैं कि इस युक्तिसे ऐसा विकल्प उठाकर पदार्थोंको असिद्ध करना युक्त नहीं है, क्योंकि विज्ञानमें एक स्वभाव ही ऐसा पड़ा हुआ है कि वह अपनेको और पदार्थको ग्रहण करे। और जैसा विकल्प उठाकर ज्ञानाद्वैतको समर्थित किया है हम उनसे यह पूछेंगे कि रूप आदिकका सजातीय और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्यका कर्तापना वे कैसे बना सकेंगे क्योंकि वहाँपर भी यह विकल्प उठाया जा सकता है कि रूप आदिक साधन जिस शक्तिके द्वारा अपने सजातीय क्षणको उत्पन्न करते हैं अर्थात् अपने आपके उत्तररूप पर्यायको उत्पन्न करते हैं क्या उस ही शक्तिसे रस आदिकको या अनुमानको उत्पन्न करते हैं। यदि एक ही शक्तिसे रूप अगले समय के रूपको उत्पन्न करे, रस आदिकको उत्पन्न करे और अनुमानको उत्पन्न करे तो उन सबमें एकता हो जायगी। तब एक कौन रहा ? ये क्षणिकवादी लोग ज्ञानका कारण पदार्थको मानते हैं। ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे होती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि रूपका ज्ञान किया तो रूप ज्ञानकी उत्पत्ति रूपसे हुई और उस रूपके बाद अगले समय में जो अन्यरूप बनेगा उसकी भी उत्पत्ति पूर्वरूपसे हुई। और रस आदिक भी उत्पन्न होंगे उनकी भी उत्पत्ति रूपसे हुई, तो क्या उसकी एक ही शक्तिसे इतने काम हुए ? अगर कहो कि एक ही शक्तिसे इतने काम हुए तो उनमें अभेद हो जायगा। वे सब कुछ न रहेंगे। कोई एक ही रहेगा। यदि कहो कि अन्य शक्तिसे हुए अर्थात् रूप आदिक एक पदार्थमें दो स्वभाव आ गए तो अनवस्था भी दोष होगा। जितने दोष बताये गए हैं शंकाकार द्वारा पूर्वपक्षकार द्वारा वे सब दोष यहाँ भी आ गए।

एक स्वभाव वाले ज्ञानसे जाननकी सिद्धि—यदि कहो कि रूप आदिक एक स्वभाव वाले होकर भी दो कार्योंको करने लगे तो यही बात ज्ञानमें सिद्ध कर लो कि ज्ञान भी एक स्वभाव वाला होकर अपनेको और पर पदार्थोंको जानता है। ज्ञानमें कला ही ऐसी है कि अपनेको और पर पदार्थोंको ग्रहण करनेका एक स्वभाव रखता है। यदि कहो कि यह तो व्यवहारसे कार्यकारण भेद है रूप आदिकमें इसलिये परमार्थ से दोष नहीं दिया जा सकता। तो यही बात तो यहाँ भी घटित है कि व्यवहारसे ही अहं अहं रूपकी प्रतीति वाले ज्ञानसे नील आदिकका ग्रहण किया जाता है तब फिर स्वतः ही प्रतिभासपना रूप हेतु देना असिद्ध कैसे न हुआ ? तात्पर्य यह है कि ज्ञानमें एक स्वभाव ऐसा है कि वह अपनेको भी जानता है और परको भी जानता है। केवल ज्ञान ही ज्ञान तत्त्व नहीं है ज्ञान भी है और अनन्त ज्ञेय पदार्थ भी हैं।

भिन्नकाल सम कालके विकल्पोंसे ज्ञानकी स्वतः अवभासमानत्वकी असिद्धि—विज्ञानाद्वैतवादीने यह सिद्ध करनेके लिए कि केवल ज्ञान ही तत्त्व है, पदार्थ है ही नहीं यह बात रखी थी कि यदि पदार्थ हो तो क्या वह पदार्थ ज्ञानके कालमें ही रहता है या ज्ञानके कालसे भिन्न कालमें रहता है ? यदि ज्ञानके कालमें रहता है तो उस अर्थका ग्रहण नहीं हो सकता। भिन्न कालमें रहता है तो उस अर्थका ग्रहण नहीं हो सकता। ऐसा कहने वाले ये क्षणिकवादी यह भी सिद्ध नहीं कर सकते कि ज्ञान अपने स्वरूपको स्वतः जानता है, क्योंकि ज्ञानके स्वरूपमें भी हम यह प्रश्न कर देंगे कि ज्ञानका स्वरूप क्या ज्ञानके समय है या ज्ञानके समयसे भिन्न समयमें है ? यदि ज्ञानके समयमें रहने वाले स्वरूपको ज्ञान जाने तो अन्य देशमें रहने वाले स्वरूपको भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान जान लेगा यह दोष आयगा। और भिन्न कालमें स्वरूप है तो जान ही कैसे सकेगा ? इससे केवल ज्ञान ही ज्ञान है तत्त्व यह सिद्ध करनेमें चूंकि हेतु दिया है कि ज्ञान ही तत्त्व है क्योंकि वह स्वत: ही अवभासमान हो सकता है तो यह युक्ति न चल सकेगी और ज्ञान परसे अवभासमान होता है यह बात ज्ञानाद्वैतवादियोंने मानी ही नहीं। द्वैतपना माने बिना कुछ भी बात सिद्ध की ही नहीं जा सकती। जो जो प्रतिभासमें आता है वह ज्ञान है ऐसा कहने वालोंको यह तो सिद्ध करना ही पड़ेगा कि ज्ञान और अविभासमानपना इनमें परस्परमें व्याप्ति है और व्याप्ति सिद्ध करनेके लिये दोनोंको पहिले मानना पड़ेगा। तो दो तो सिद्ध हो ही जायेंगे। यदि उनमें व्याप्ति लगावोगे तो दो सिद्ध हो जायेंगे और दो सिद्ध माननेसे केवल ज्ञान ही तत्त्व है यह बात नहीं रही। यदि यह कहो कि सारा ज्ञान अपने आपमें ही अवभासमानता और ज्ञान इन दोनोंकी व्याप्तिको जानता है तो सारा अवभासमानपना जब तक जान न लिया जाय तब तक सम्बन्ध कैसे बताया जा सकता है ? जितने भी ज्ञान हैं वे सब प्रतिभासस्वरूप हैं, ऐसा सिद्ध करनेके लिये समस्त ज्ञानका ज्ञान तो होना चाहिए। तो ज्ञानके स्वरूपका ग्रहण नहीं बन सकता है केवल ज्ञानाद्वैतमें।

ज्ञान और अज्ञानके विकल्पोंसे जड़ पदार्थका अभाव सिद्ध करनेपर इन्हीं विकल्पोंसे प्रतिपाद्यप्रतिपादकताके व्यवहारका विनाश —ज्ञानाद्वैतवादकी अब अन्य बातोंपर भी दृष्टिपात कीजिये ! देखो, ज्ञानाद्वैतवाद जड़ पदार्थोंको नहीं मानता और जड़ पदार्थ नहीं है इसमें यह युक्ति देते हैं कि जड़में प्रतिभास ही नहीं होता। यद्यपि यह बात एक नयसे इस तरह घटाई जा सकती है कि ज्ञान ज्ञानको तो प्रतिभास करता है निश्चयनयसे, पर ऐसे नयकी दृष्टि नहीं है ज्ञानाद्वैतमें प्रतिभासके स्वरूपको बतानेमें, किन्तु वे सर्वथा ही ऐसा मानते हैं कि जड़ पदार्थका प्रतिभास होता ही नहीं है। तो उनसे पूछा जा रहा है कि अज्ञात जड़ पदार्थका प्रतिभास नहीं बनता? यदि कहो कि अज्ञात जड़ पदार्थका प्रतिभास नहीं बनता तो अनेक शिष्य ये भी तो अज्ञात हैं, फिर इनको समझानेकी क्यों चेष्टा की जाय ? क्योंकि अज्ञातका तो प्रतिभास भी नहीं होता। यदि कहो कि अन्य जो शिष्य हैं वे अपने प्रतिभासमें आते हैं तो यों जड़ पदार्थ भी अपने प्रतिभासमें आते हैं। दोनों प्रतीति बराबर समान रूपसे जच रहीं हैं। फिर अज्ञात जड़में भी यह प्रतिभाससे बाहर है ऐसा विचार तो आप कर रहे हो ना, तो उस ही विचारसे जड़की सिद्धि हो गयी। इससे अज्ञात जड़का प्रतिभास नहीं होता यह बात तो कह नहीं सकते यदि कहो कि ज्ञात हुए जड़ पदार्थका प्रतिभास नहीं होता तो यह तो स्ववचनाबधित है, ज्ञात है और फिर भी कहते हो कि प्रतिभास नहीं होता। यह तो परस्पर विरुद्ध बात है, इससे सही प्रकारसे मान लिया जाना चाहिए कि ज्ञान भी तत्त्व है और ये अनन्त ज्ञेय भी तत्त्व हैं।

ज्ञानाद्वैतकी सिद्धिमें प्रयुक्त प्रतिभासमानत्व हेतुके दृष्टान्तमें साध्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकलता – ज्ञानाद्वैतवादियोंने ज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करनेके लिए बताया था कि जो जो कुछ प्रतिभासमें आता है वह वह सब ज्ञानस्वरूप है। तो इस कथनमें जो कुछ भी दृष्टान्त दोगे वह साध्य विकल हो जायगा। जैसे नैयायिक लोग सुख आदिकको ज्ञानरूपमें नहीं मानते और प्रतिभासमें आ रहा है। यदि कहो कि हमारे इस ही हेतुसे सुख आदिकमें ज्ञानरूपताकी सिद्धि हो जायगी तो फिर यहाँ अनुमान सिद्धिमें अन्य कोई दृष्टान्त दीजिये। जो दृष्टान्त दोगे उसमें भी व्यभिचार आनेपर उसे भी पक्षमें करना चाहोगे तो उसके लिये और अन्य दृष्टान्त दो इस तरह अनवस्था दोष होगा। यदि इन पदार्थोंको ही, नील आदिक पदार्थोंको ही दृष्टान्तरूपमें रख करके ज्ञानरूप सिद्ध करोगे तो इसमें इतरेतरा दोष है। जब सुख आदिकमें ज्ञानरूपताकी सिद्धि होगी तो नील आदिक पदार्थोंका दृष्टान्त देकर ज्ञानरूप सिद्ध करोगे। जब नील आदिकके दृष्टान्तमें ज्ञानरूपता सिद्ध होगी तो सुख आदिककी ज्ञानरूपता सिद्ध होगी। इससे यह सब प्रलापमात्र है। आबाल गोपाल, बालकसे लेकर विद्वान तक सभीको स्पष्ट समझमें आ रहा है कि ज्ञान भी कोई चीज है तो ये समस्त पदार्थ जो हमारे ज्ञेयमें आ रहे हैं ये भी वास्तविक पदार्थ हैं।

सुखादिको अज्ञानरूप माननेमें अभीष्टकी असिद्धि – ज्ञानाद्वैतवादी यदि ऐसा कहें कि सुख आदिकको अज्ञानरूप मान लिया जाय सुख दुःख आदिक अज्ञानस्वरूप हैं जैसा कि नैयायिकोंने माना, मान लिया जाय तो यह दोष होगा कि उस सुख दुःख आदिकसे पीड़ा और अनुग्रह न हो सकेगा, क्योंकि वह अज्ञानरूप है। इस पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि सुख आदिक ही क्या पीड़ा अनुग्रहरूप हैं या सुख आदिकसे पीड़ा अनुग्रह कोई भिन्न चीज है? यदि कहो कि सुख आदिक ही पीड़ा और अनुग्रह हैं, विषाद और उपकार हैं तो वह दृष्टान्त बतावो जहाँ कि सुख दुःख आदिक ज्ञानरूपसे मान लिए जायें। यदि ज्ञानपनेकी और विषाद और उपकारसे व्याप्ति सिद्ध न होनेपर भी ज्ञानके अभावमें पीड़ानुग्रहका अभाव हो जाय तो जब यह अनुमान बनाया जायगा कि जीवित शरीरमें आत्मा है क्योंकि उच्छ्वास आदिक है तो आत्माकी उच्छ्वासादि प्राणसे कोई अन्वय व्याप्ति नहीं बननेपर भी घटादिकमें आत्माके अभावमें प्राणादिमत्ताका अभाव सिद्ध हो जायगा, फिर केवल व्यतिरेकी हेतुको अगमक याने असाधक सिद्ध करना अयुक्त है। यदि कहो कि सुख आदिकसे पीड़ा अनुग्रह भिन्न चीज है तो भिन्न चीजमें पीड़ा अनुग्रह बन कैसे सकेगा? यदि यज्ञदत्तमें गौरवर्ण नहीं है तो देवदत्त दुनियामें है ही नहीं, ऐसा कोई कहे तो कौन मान लेगा? भिन्न भिन्न चीजोंका सम्बन्ध क्या बनाया जा सकता है! इससे ज्ञान अपने स्वरूपसे प्रतिभासमान है, पर ज्ञानका जो स्वरूप बनता है सो किसी ज्ञेय पदार्थको विषय करता हुआ बनता है और वह ज्ञेयपदार्थ परमार्थतः है तब उसका विषय होता है। कुछ भी बाह्य अर्थ न हो तो कल्पनामें भी कैसे कुछ पदार्थ आ सकता है।

अद्वैत शब्दकी ध्वनिमें द्वैतकी सिद्धि – भैया! इतना भी सीधे ढङ्गसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचार कर सकते हैं कि जो तुम अद्वैत सिद्ध कर रहे हो तो अद्वैतमें दो शब्द कहे ना अ और द्वैत, अ का अर्थ है नहीं और द्वैतका अर्थ है दो। अर्थात् अद्वैतका अर्थ है दो नहीं। तो अद्वैतका जो अर्थ किया जायगा वह क्या बिल्कुल अभावरूप है या अन्य-विसदृशको ग्रहण करने वाला है ? जैसे कहो कि अब्राह्मणो भोज्यतां, अब्राह्मणको खिलाइये ? इसके दो अर्थ किए जा सकते हैं। एक तो यह कि ब्राह्मणको न खिलाइये। अर्थ समाप्त हो गया। और, एक यह भी अर्थ किया जा सकता है कि जो ब्राह्मण नहीं है उसे खिलाइये। तो इसप्रकार अद्वैतका क्या इतना ही अर्थ है कि द्वैत नहीं है, या यह अर्थ है कि इसकी एवजमें कुछ है ! तो प्रसज्य प्रतिषेध अर्थात् केवल अभावके बात बताना ऐसा मानोगे तो उससे तो इतना ही मात्र जाहिर हुआ कि द्वैत नहीं, अद्वैतकी बात तो नहीं आयी। किसी एककी बात सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि यह अर्थ तो एक अभावमात्र करनेमें ही समाप्त हो रहा है। यदि कहो कि हम उसमें मुख्य गौणकी बात ले लेंगे। द्वैत नहीं है यह बात तो हम गौण कर देंगे और कुछ है उसे मुख्य बना लेंगे। तो गौण और मुख्य बनानेमें दो बातें सिद्ध हो गयीं कोई गौण बना कोई मुख्य। यदि इसका पर्युदास अर्थ लेते हैं - जैसे अब्राह्मणका यह अर्थ लिया जाय कि ब्राह्मणके अलावा और सब, तो यह पर्युदास अर्थ कहलाता है। तो पर्युदास अर्थ माननेपर द्वैतकी सिद्धि हो गयी। तो दो कुछ चीज हैं ना, उसका तुम निषेध कर रहे हो तो केवल एक अद्वैत ही है, ज्ञान ही मात्र है इस बातकी सिद्धि नहीं हो सकती।

द्वैतसे अद्वैतकी भिन्नता व अभिन्नता माननेमें भी द्वैतकी सिद्धि— द्वैतसे अद्वैत क्या भिन्न है या अभिन्न है यह भी बतावो ? जिन दोका हम निषेध कर रहे हैं, जिस दूसरेको हम असिद्ध कर रहे हैं, उस दूसरेसे यह अद्वैत, अपने ज्ञानका मन्तव्य भिन्न है या अभिन्न ? यदि भिन्न कहोगे तो द्वैत सिद्ध हो गया। तो दूसरी चीज जुदी है और यह ज्ञानाद्वैत जुदी चीज है। यदि कहो कि अभिन्न है, द्वैत और अद्वैत एक है, जिसे तुम अद्वैत मान बैठे तो ऐसी अभिन्नता करनेपर भी द्वैत तो मान लिया गया जैसे अद्वैत मानते हैं, तब भी द्वैत सिद्ध हो जाता है। केवल ज्ञान ही तत्त्व है, ज्ञेय कुछ नहीं है, यह मन्तव्य यथार्थ नहीं है। ज्ञान भी तत्त्व है और उसका आधार आत्मा है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है और ज्ञानस्वभावके कारण निरन्तर जानता रहता है ये अनन्त पदार्थ, अनन्त जीव और समस्त अनन्त पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल हैं जो स्वरूपसे सिद्ध हैं इन अनन्त पदार्थोंका निषेध नहीं किया जा सकता।

चित्राद्वैतका मन्तव्य और हेतुके निराकरणीय अर्थोंका विकल्प— ज्ञानाद्वैतवादके निराकरणके पश्चात् एक चित्राद्वैतवादी आता है। चूंकि प्रकरणमें नाना पदार्थ सिद्ध किए गए हैं न, तो उसपर चित्राद्वैतवादी मान्यनिक कहता है कि सब चित्राद्वैत है। जो ये नाना पदार्थ हैं सो ये नानारूप नहीं हैं, किन्तु इन चित्र विचित्र नाना प्रतिभासोंमें एक बुद्धि ही सही है। यह बुद्धि बाह्यके चित्र विचित्र नाना पदार्थोंसे विसदृश है। ये बाह्य पदार्थ इनका तो विवेचन किया जा सकता है परन्तु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समस्त पदार्थोंका जो कुछ एक साथ प्रतिभास वाली बुद्धिका विवेचन नहीं किया जा सकता । तो चित्र पदार्थोंसे चित्र प्रतिभास विलक्षण चीज है सो चित्र प्रतिभासरूप बुद्धि ही वास्तविक तत्त्व है; ये चित्र विचित्र पदार्थ तो मायारूप हैं अब इस चित्राद्वैत के मंतव्यपर आचार्य पूछते हैं कि अशक्य विवेचनताका तुम क्या अर्थ करते हो ? वह जो तुम्हारी बुद्धि बनी है उस बुद्धिसे ये नीलादिक पदार्थ अभिन्न हैं यह मतलब है (२) एक साथ उत्पत्ति हुए चित्र विचित्र पदार्थोंका अन्य बुद्धिमें न आनेसे वर्तमान बुद्धिसे उसका अनुभव हुआ । क्या यह अर्थ है उसका या (३) भेद पूर्वक उसका विवेचन नहीं किया जा सकता, क्या यह अर्थ है ? इन तीन विकल्पोंको उठाकर आचार्यदेव चित्राद्वैतकी असिद्धि बतावेंगे कि यह भी कथन युक्त नहीं है कि चित्र प्रतिभासकी ही एक बुद्धि ही तत्त्व है और ये नाना प्रकारके चित्र विचित्र पदार्थ हैं ही नहीं तब आचार्यदेव आगे वास्तविकताका समर्थन करेंगे ।

चित्राद्वैतके निराकरणसे पहिले चित्राद्वैतके मन्तव्यके आशयका प्रकाशन —ज्ञानाद्वैतवादमें तो यह सिद्ध किया गया था कि सिर्फ सब ज्ञान ही ज्ञान है और घट-पट आदिक पदार्थ हैं यह लोगोंका भ्रम है । केवल ज्ञान ही है यह ज्ञानाद्वैतमें कहा । अब चित्राद्वैतमें यह कह रहे हैं कि ज्ञान ही ज्ञान मात्र है तत्त्व पदार्थ नहीं है, इसमें इतना संशोधन करना चाहिए कि बाहरी पदार्थ तो नहीं है किन्तु ज्ञान नाना आकाररूप है । ज्ञानाद्वैतवादी ज्ञानको नाना आकाररूप नहीं मानते और चित्राद्वैतमें ज्ञानको नाना आकाररूप मानते हैं । तो चित्राद्वैतवादी यह बात रख रहे हैं कि चित्र विचित्र जो प्रतिभास हैं वे सब मिलकर एक ज्ञान है । बाह्य पदार्थ कुछ नहीं है, क्योंकि बाह्य पदार्थका तो हम विवेचन कर सकते हैं जो कि मायारूप है और यहाँ ज्ञानमें जो नाना आकार आ रहे हैं, पदार्थ प्रतिभास हो रहे हैं उन नाना आकारोंसे हम ज्ञानको भिन्न रूपसे नहीं बता सकते । इसपर जैन शासनने पूछा है कि चित्रप्रतिभासरूप एक बुद्धि माननेमें जो अशक्य विवेचनत्व हेतु दिया है सो अशक्य विवेचनपन इसका अर्थ क्या है ? क्या ज्ञानसे पदार्थ अभिन्न है या ज्ञानके साथ वे पदार्थ उत्पन्न हुए, उनका हम अन्य ज्ञानसे नहीं किन्तु उस ही ज्ञानसे अनुभव करते हैं, क्या इसका नाम अशक्य विवेचन है या भिन्नरूपसे विवेचन कर ही नहीं सकते यह सीधा अर्थ है ?

अशक्यविवेचनत्व हेतुके तीनों अर्थोंका निराकरण - यदि यह बतावोगे कि ज्ञानसे उन आकारोंकी नील आदिक पदार्थोंकी अभिन्नता है क्योंकि अशक्य विवेचन होनेसे तो यह तो एक ही बात हुई । साध्यसम हेतु हुआ । जैसे कोई कहे कि घट पट आदिक पदार्थ बुद्धिसे अभिन्न हैं क्योंकि अभिन्न होनेसे, जो चीज सिद्ध कर रहे हैं उसीका हेतु दिया जाय तो वह सही अनुमानका अङ्ग तो नहीं है । यदि दूसरा पक्ष लोगे कि ज्ञानके साथ उत्पन्न हुए इन समस्त पदार्थोंका अन्य ज्ञानसे अनुभव नहीं होता उस ही ज्ञानसे अनुभव होता है तो फिर इसमें अनैकांतिक दोष है । समस्त जगतके जानने वाले जो तुम्हारे देवता सुगत हैं उनके ज्ञानके साथ ही उत्पन्न है ना सारा विश्व सो उसे वह अन्य ज्ञानसे नहीं किन्तु उस ही ज्ञानसे जानता है, मगर उनके ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से और सारे विश्वकी एकता तो नहीं हुई। यदि तुम्हारे सुगतके ज्ञानसे सारे विश्वकी एकता हो जाय तो या तो सारा संसार सुगत देवता बन जाय (बौद्धोंका जो देव है उसका नाम सुगत है) या सारे सुगत संसारी बन जायें इससे द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है और यह कहना कि ज्ञानमें आये हुए उन समस्त पदार्थोंका विवेचन नहीं हो सकता, सो बात तो असिद्ध है। सारे मनुष्य इन समस्त पदार्थोंका विवेचन-व्याख्यान करते हैं। इस कारण एक चित्राद्वैत है, यह तत्त्व भी सिद्ध नहीं होता।

शून्याद्वैतका मन्तव्य और उसमें बाधा — चित्राद्वैतसे लगा-पगा एक सिद्धान्त यह कहता है कि उस चित्र-विचित्र प्रतिभास वाले ज्ञानमें वह एक ज्ञान है और अनेकाकार है, ऐसा हत एक ज्ञानमें अक्रमसे अनेकाकारका रहना नहीं मानते, किन्तु जितना एक जातीय आकार है इतना ही वह ज्ञान है। इसको यों समझिये कि जैसे हम एक निगाहमें कमरेके ५० पदार्थोंका आकार एक साथ हमारे ज्ञानमें आ गया। तो हमारा ज्ञान उन ५० पदार्थोंके आकाररूप बना ना, लेकिन यह शून्याद्वैतवादी यह कहता है कि वह एक ज्ञान नहीं है, जो ५० पदार्थोंके आकाररूप बना वह एक नहीं है, जितने आकार हैं, जितने अंश हैं उतने ज्ञान हैं। इसपर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसे कथनमें अगर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करोगे तब तो दुनियामें कुछ भी न रहेगा जैसे नील पदार्थको जान रहा ज्ञान, उस समय पीत आदिकको नहीं है तो पीत आदिक का अभाव हो गया और जब पीत आदिकको जान रहा तब नील आदिकको नहीं जान रहा तो उनका अभाव है। और भी किसी पदार्थको जैसे कोई नीला कमल है उसका हम किसी हिस्सेमें ज्ञान ले रहे हैं तो उस समय अन्य कुछ नहीं जाना जा रहा है तो उसके अंशोंका अभाव हो गया। एक साथ कई ज्ञानोंमें सर्वांश पदार्थ ज्ञात होते हैं ऐसी सही बातको मना कर रहे हैं ये क्षणिकवादी। तो फिर यह दोष दे रहे हैं कि एक साथ सर्वांशका पदार्थ ज्ञानमें आ रहा और तुम उसे मान रहे हो कि जितने आकार जितने अंश ज्ञानमें आते हैं, ज्ञान उतने हैं, एक ज्ञान नहीं है, तो एक ज्ञानसे सब तो नहीं जाना गया। एक अंश जाना गया। तब तो फिर सब वस्तुवोंका ही जायगा। यदि यह कहो कि हमने एक शून्य है एक अद्वैतको तो तत्त्व माना है पर शून्यता नहीं मानी। शून्य एक आकार वाला प्रतिभास, दूसरे आकार वाले प्रतिभास का अन्य आकार वाले प्रतिभासमें अभाव है। इस तरहकी शून्यताका अद्वैत माना है लेकिन ऐसा माननेपर तो किसीका सम्वेदन न रहेगा।

सकल शून्यताकी असिद्धि—यह बतलावो कि सर्व शून्य है यह जगत। केवल एक ऐसा ज्ञान ही तत्त्व है। तो सर्वशून्य है इसकी सिद्धि तुमने किसने की ? प्रमाणसे की या प्रमाणके बिना की ? शून्य है सब, कुछ भी नहीं है ऐसा जो शून्याद्वैत है वह यदि प्रमाणसे सिद्ध मानोगे तो प्रमाण तो कुछ हुआ, शून्य तो न रहा। यदि प्रमाणके बिना शून्याद्वैतकी सिद्धि मानोगे तो प्रमाणके अभावमें प्रमेयकी सिद्धि कैसे हो सकती है ? इससे यह मानो कि ज्ञान वह है जो स्व और पर पदार्थका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निश्चय कराये। इस ग्रन्थमें सबसे पहिले यह बताया है कि स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। स्व तो हुआ यह खुद जो जाननहार है और पर पदार्थमें आये अनन्त जीव, समस्त अनन्तानन्त पुद्गल, धर्मद्रव्य, आकाश और असंख्यात काल, इन सबका निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण है। इसपर बहुत वाद-विवाद होते होते कुछ लोगोंने अद्वैत मत रखा। किसीने कहा कि केवल ब्रह्म ही तत्त्व है, किसीने रखा कि केवल ज्ञानस्वरूपमात्र ही तत्त्व है, पदार्थ कुछ नहीं है। तो चित्राद्वैतने यह रखा कि ज्ञानमात्र तत्व है यह तो सही है, ये बाहरी जितने पदार्थ हैं ये भ्रम हैं, लेकिन वह ज्ञानस्वरूप चित्र-विचित्र नाना आकाररूप है। जितने प्रतिभास ज्ञानमें आ रहे हैं उतने प्रतिभासरूप ज्ञान हैं, यह बात चित्राद्वैतने रखी तो शून्याद्वैत यह कहता है कि उस ज्ञानमें जिसमें कि नाना आकार प्रतिभासित हो रहे हैं वे सब एक ज्ञानमें बन रहे, किन्तु जितने प्रतिभास हैं, जितने आकार विदित हो रहे हैं उतने ही ज्ञान हैं। अब देख लीजिये कि उतने ज्ञान बन गये अपने आपमें कि जितने आकार हैं। अगर गेहूँका ढेर पड़ा है जहाँ अरबों दाने हैं एक मनभर गेहूँ हो तो उसमें बहुतसे दाने होते हैं, उन सब दानोंको एक ज्ञानने जान लिया यह तो बात स्पष्ट है ना, लेकिन यह कहता है कि जितने दाने हैं उतने ज्ञान-क्षण बन गए। टूट-टूटकर उतने ज्ञान समा गए तो वे सब अंश ज्ञान हो गये, एक दानेके ज्ञानमें जितने अंश होंगे उतने ज्ञान हो गए। यों तो न ज्ञानका स्वरूप बन सकता और न पदार्थका।

ज्ञानकी प्रमाणता और ज्ञेयोंका सद्भाव – भैया! सीधे मानो कि ज्ञानमात्र आत्मा है, वह पदार्थका ज्ञान करनेमें समर्थ है और ज्ञानको कुछ न कुछ विषयभूत पदार्थ चाहिए ही। तो जो पदार्थ ज्ञानका विषय आया वह पदार्थ अपनी सत्ता अलग रखता है। जाननहार ये चेतन पदार्थ अपनी सत्ता अलग रखते हैं, सब अपना अपना काम कर रहे हैं। इन जड़ पदार्थोंका काम उत्पादव्यय करते रहना है, सो अपने स्वरूपसे अपने ही अनुरूप वे उत्पादव्यय करते हैं। इस चैतन्य आत्माका भी काम उत्पादव्यय करना है सो चूँकि यह चेतन है इसलिये जाननेके ढंगसे यह अपना उत्पाद व्यय करता रहता है, ज्ञानका मात्र नवीन नवीन परिणत होता रहता है। ज्ञान भी तत्त्व है और ये समस्त ज्ञेयतत्त्व हैं। इनमेंसे किसीका भी अपलाप नहीं किया जा सकता है। इन सबका जाननहार जो एक ज्ञान है वह ही सब व्यवस्था बनाता है और वह ज्ञान प्रमाण है। इस प्रकार यहाँ तक यह सिद्ध किया गया कि ज्ञानका स्वरूप ऐसा ही मानना चाहिए जो अपने आपके स्वरूपका प्रतिभास करे और समस्त पदार्थोंका प्रतिभास कराये। और प्रकारसे ज्ञानका स्वरूप मानोगे तो न स्वरूप बन सकेगा और न प्रमाणता आ सकती है।

इति परीक्षामुखसूत्रप्रवचन चतुर्थभाग समाप्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com